BHDC-105

छायावादोत्तर हिंदी कविता

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

BHDC-105
छायावादोत्तर हिंदी कविता

खंड

2

इकाई 7
माखनलाल चतुर्वेदी

इकाई 8
अज्ञेय

इकाई 9
भवानी प्रसाद मिश्र

इकाई 10
रघुवीर सहाय

इकाई 11
सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

इकाई 12
केदारनाथ सिंह

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 7 : माखनलाल चतुर्वेदी

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 स्वतंत्रता–पूर्व हिन्दी कविता में राष्ट्रीय चेतना की पृष्ठभूमि
7.3 माखनलाल चतुर्वेदी का जीवन परिचय
7.4 पत्रकारिता और माखनलाल चतुर्वेदी
7.5 माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य का भाव पक्ष
7.6 माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य का रचना–शिल्प
7.7 माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य का मूल्यांकन
7.8 सारांश
7.9 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर
7.10 उपयोगी पुस्तके

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप :

- कवि के युग की प्रवृत्तियाँ बता सकेंगे/सकेंगी।
- कवि के व्यक्तित्त्व और कृतित्व का वर्णन कर सकेंगी/सकेंगे।
- कवि के राष्ट्रीय स्वर का विवेचन कर सकेंगी/सकेंगे।
- तीनों कविताओं 'कैदी और कोकिला', 'पुष्प की अभिलाषा' तथा 'सिपाही' शीर्षक कविता का रसास्वादन कर सकेंगी/सकेंगे।
- राष्ट्रीय नवजागरण में पत्रकारिता के माध्यम से कवि के योगदान का परिचय दे सकेंगी/सकेंगे।
- कवि के काव्य का अपने शब्दों में मूल्यांकन कर सकेंगी/सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना का विकास भारतेन्दु युग से ही दिखाई देता है। यह राष्ट्रीय भावना अतीत–गौरव के गान एवं देश–प्रेम के रूप में अभिव्यक्त हुई है। बीसवीं शताब्दी में राष्ट्रीयता की भावना तेजी से उभरी, देशवासियों ने ब्रिटिश शासन की दुर्भावना को समझा और देश की एकता की आवश्यकता की गहराई से महसूस किया। दक्षिण अफ्रीका में गांधी जी का अहिंसात्मक प्रतिरोध सफल हुआ जिसने भारतवासियों को मानसिक बल प्रदान किया। देश में एक नये उत्साह की लहर दौड़ गई। इसी अवसर की माखन लाल जी कविता के क्षेत्र में अवतरित हुए।

7.2 स्वतंत्रता पूर्व हिन्दी कविता में राष्ट्रीय–चेतना की पृष्ठभूमि

हिन्दी कविता की समस्त काव्य–धाराओं में राष्ट्रीय काव्यधारा का विशेष महत्व है। राष्ट्रीय कविताओं द्वारा राष्ट्र के भिन्न–भिन्न वर्गों, सम्प्रदायों और प्रान्तों में भावात्मक एकता के विचार पुष्ट होते हैं। राष्ट्रीय कविताएँ जाति, समाज और प्रान्तीयता की संकीर्ण भावना मिटाती हैं, जन–सामान्य के हृदय में कर्तव्य की भावना जगाती हैं। इन्हीं कविताओं से प्रेरणा पाकर अनेक वीरों ने हँसते–हँसते अपने को देश की आज़ादी के लिए अर्पित कर दिया। वास्तव में हिन्दी कविता ने स्वाधीनता आन्दोलन में राष्ट्र को जगाने का महत्वपूर्ण कार्य किया।

आधुनिक हिन्दी कविता के प्रथम चरण में नवजागरण का प्रभाव व्यापक रूप से पड़ा। भारत में व्यापार के लिए आई हुई विदेशी जातियों ने यहाँ की राजनीतिक स्थिति का लाभ उठाकर छल–बल द्वारा भारत को अपना उपनिवेश बना लिया और अंग्रेज भारतीय जनता पर नाना प्रकार के अत्याचार करने लगे। भारत के नरेशों एवं जनता के साथ जिस प्रकार की नीति उन्होंने अपनायी उससे भारत का समस्त जन–मानस क्षुब्ध हो गया। लार्ड डलहौजी के अमानुषिक अत्याचार ने भारतीय जनता के हृदय में विद्रोह की आग सुलगा दी जो 1857 की क्रांति–ज्वाला बनकर धधक उठी। 1857 की इस क्रांति ने उग्र रूप धारण किया परन्तु अंग्रेजों ने उतनी ही क्रूरता एवं नृशंसता से इसका दमन किया। इस प्रकार 1857 की यह क्रांति असफल ही रह गई।

राष्ट्रीयता की भावना चूंकि विखंडित अवस्था में थी अतः प्रथम स्वाधीनता संग्राम असफल रहा। राजनीतिक आन्दोलनों में जैसे–जैसे तीव्रता आती गई वैसे–वैसे राष्ट्रीय चेतना प्रखर होती गई। परिणामस्वरूप समूचे देश ने अंग्रेजी सत्ता से मुक्त होने के लिए अपनी प्रान्तीय संकीर्णता को त्यागकर एकता और संगठन के महत्व को
समझा।

अंग्रेज भारत में अपनी राजनीतिक जड़ें गहराई तक रखना चाहते थे अतः यहाँ की सांस्कृतिक चेतना समाप्त करने के लिए उन्होंने कदम उठाया। क्योंकि वे जानते थे कि किसी भी देश की जनता को गुलाम बनाए रखने के लिए वहाँ की सांस्कृतिक चेतना को समाप्त करना आवश्यक है। अंग्रेज यहाँ की शिक्षा–नीति में परिवर्तन करने लगे। संपूर्ण देश में अंग्रेजी शिक्षा–पद्धति चालू हो गई। ईसाई मिशनरियाँ अपने धर्म का प्रचार करने लगीं। धर्म–प्रचार के लिए इन्होंने अपनी धर्म–पुस्तकें यहाँ की भाषाओं में छपवाकर बिना मूल्य के वितरित की। यहाँ के लोगों के सामाजिक–धार्मिक विधानों में भी हस्तक्षेप करना आरम्भ किया और जो गलत रूढ़ियाँ समाज में व्याप्त थीं उनका विरोध किया। फलतः भारतीय समाज पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होने लगा। भारतीय संस्कृति एवं पाश्चात्य संस्कृति के इस संघर्ष को दूर करने के लिए सांस्कृतिक आन्दोलन चलाए गए। इन आन्दोलनों को चलाने में राजाराम मोहन राय, राम–कृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, लोकमान्य तिलक, स्वामी दयानन्द सरस्वती, अरविन्द रमण महर्षि के नाम उल्लेखनीय हैं।

राजा राममोहनराय ने ब्रहम समाज की स्थापना की। इसका मुख्य उद्देश्य समाज में व्याप्त कुरीतियों को जड़ से मिटाना था। इन्होंने विधवा–विवाह–निषेध, सती प्रथा तथा अन्य कुरीतियों

का विरोध किया और स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह, अन्तर्जातीय विवाह आदि का समर्थन किया। भारतीय जन–जीवन में आरंभिक जागरण की दृष्टि से इस संस्था का बड़ा महत्व रहा। आरंभ में कवीन्द्र रवीन्द्र ने भी इस संस्था को समर्थन दिया। धर्म और समाज के क्षेत्र में इस संस्था ने जागरण लाने का प्रयत्न किया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना की। इन्होंने ईसाई धर्म के विरुद्ध आन्दोलन चलाया। लोगों में स्व–धर्म सम्मान की भावना जगी। जाति–अभिमान और राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ : स्वतंत्रता आन्दोलन की चेतना को बल मिला। धर्म के नाम पर होने वाले आडम्बरों का विरोध किया।

रामकृष्ण परमहंस के आदर्शों को लेकर रामकृष्ण मिशन की स्थापना हुई। इस संस्था ने भी राष्ट्रीय आन्दोलनों को बल प्रदान किया। स्वामी विवेकानन्द ने भी इस संस्था को पूर्ण सहयोग दिया, भारतीय जन–मानस को सभी क्षेत्रों में प्रबुद्ध किया।

महाराष्ट्र के महादेव गोविन्द रानाडे ने भी धर्म एवं समाज में व्याप्त रूढ़ियों का विरोध किया, राष्ट्रीय चेतना जगाई। महाराष्ट्र की जागृति में इस संस्था का योगदान महत्वपूर्ण था।

इस दृष्टि से थियोसोफिकल सोसाइटी का महत्व भी कम नहीं है। यद्यपि इसकी स्थापना अमेरिका में हुई थी परन्तु श्रीमती एनी बेसेन्ट के इस संस्था में आने से इस संस्था को उद्देश्य पूर्ति में सफलता मिली। सामाजिक–चेतना, जातीय स्वाभिमान, आधुनिक चेतना, भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं दर्शन का सम्यक अध्ययन आदि की दृष्टि से इस संस्था का महत्व है। इन्होंने ही भारतीय संस्कृति एवं दर्शन के अध्ययन एवं प्रचार हेतु काशी में सेण्ट्रल हिन्दू स्कूल खोला वही बाद में कालेज और फिर हिन्दू विश्वविद्यालय के रूप में विकसित हुआ।

इसके अतिरिक्त सनातन धर्म सभा जैसी संस्थाओं ने भी सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का कार्य किया। लोगों में राष्ट्रीय चेतना जागृत की।

इण्डियन एसोसिएशन और इण्डियन नैशनल कांग्रेस की स्थापना ने लोगों के मन में एक राजनीतिक चेतना जगाई। सन् 1876 ई. में श्री सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने कलकत्ता में इण्डियन एसोसिएशन संस्था का आरंभ किया। इन्होंने अंग्रेजों के विरूद्ध देश व्यापी आंदोलन चलाया। यद्यपि बहुत सफलता नहीं मिली लेकिन लोगों में राजनीतिक चेतना आई और राष्ट्रीय स्तर पर एकजुट होकर कार्य करने की भावना जगी। इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना सन् 1885 में श्री ह्यूम नामक एक अंग्रेज ने की जिसका कार्य केवल भाषण तक ही सीमित रहा परन्तु बाद में बाल गंगाधर तिलक जैसे लोगों का सक्रिय योगदान इस संस्था को मिला और सिद्धांतों में परिवर्तन हुआ। सन् 1905 में जब बंगाल का विभाजन हुआ तो इस संस्था के आन्दोलन द्वारा भारतीय जन–मानस में राजनीतिक जागृति आई और बाद में महात्मा गांधी जैसे लोगों के सहयोग से इस संस्था को अपने उद्देश्य में सफलता मिली। यह वह समय था जब लोगों में राजनीतिक चेतना का जन्म हुआ। देश की वास्तविक दशा का भान लोगों को होने लगा। सुधारवादी आन्दोलनों से धार्मिक एवं सामाजिक जागृति आई और कांग्रेस की स्थापना तो स्वदेशी आन्दोलन जोर पकडने लगा। सारे देश में देश–भक्ति की लहर प्रवाहित हो गई।

7.3 माखन लाल चतुर्वेदी का जीवन–परिचय

माखनलाल चतुर्वेदी का जन्म 4 अप्रैल सन् 1889 को होशंगाबाद से 14 मील दूर 'बाबई' ग्राम में हुआ था। इनके पिता श्री नन्दलाल चतुर्वेदी प्राइमरी स्कूल के अध्यापक थे। पं. नन्दलाल स्वयं बड़े साहसी और स्वाभिमानी व्यक्ति थे जिसका प्रभाव उनके पत्र माखनलाल पर भी पड़ा। असमय ही इनके पिता स्वर्गवासी हो गए और बालक माखनलाल के भरण–पोषण और शिक्षा–दीक्षा का भार उनकी सात्विक विचारों वाली माताजी श्रीमती सुकर बाई पर पड़ा। 'बाबई' जैसी एक छोटी सी बस्ती में बालक माखनलाल की शिक्षा–दीक्षा की कोई उचित व्यवस्था नहीं हो सकती थी इसलिए ऊँचे संस्कारों वाली जननी ने अपने बेटे के प्रति मोह को भुलाकर उन्हें उनकी बुआ के पास 'सिमरनी' नामक कस्बे में भेज दिया। बालक माखनलाल ने सिमरनी में ही रहकर, लगभग दस वर्षों तक शिक्षा पाई और वहीं उन्हें काव्य–रचना की पहली अन्तः प्रेरणा प्राप्त हुई। बचपन से ही इन्हें तुकबंदियाँ करने का शौक था। अतः तुकबंदियाँ करते–करते इनकी काव्य प्रवृतियाँ पुष्ट हो चली थीं। किन्तु अपने जन्मजात संस्कारों के बल पर उन्होंने स्वाध्याय से ही अपने ज्ञान–भण्डार को समृद्ध किया। चतुर्वेदी जी ने संस्कृत, अंग्रेजी, मराठी, गुजराती, बंगला आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया और इन सभी भाषाओं में उपलब्ध उच्च कोटि के साहित्य का अध्ययन भी कर लिया। सन् 1904 में 15 वर्ष की अवस्था में इनका विवाह ग्यारसी बाई के साथ हुआ। 1905 ई. में बम्बई के निकट एक देहात 'मसन' में वे अध्यापक नियुक्त हुए। देश की मिट्टी से इनका बचपन से ही अनन्य प्रेम था। यही कारण है कि मिडिल परीक्षा देने के लिए जब ये जबलपुर गए तब इनकी पहचान क्रांतिकारी युवकों से हुई। उस समय से ही ये उन्हें पिस्तौल, बम आदि छुपाने तथा ले जाने में सहायता किया करते थे।

1906 में जब कलकत्ता कांग्रेस में लोकमान्य तिलक पधारे तो माखनलाल जी भी उनकी सुरक्षा के लिए कलकत्ता गए। वहीं से लौटते समय काशी में इन्होंने क्रांतिकारी नेता देवसकर से दल की दीक्षा ली। इसके बाद इनका क्रांतिकारियों से संपर्क बढ़ा। इनके संबंधों का क्षेत्र विस्तृत हो चला था। सैयद अलीमीर, स्वामी रामतीर्थ, पं. माधवराव सप्रे तथा माणकचन्द जैन का इन पर व्यापक प्रभाव पड़ा। सप्रे जी ने इनमें देश–भक्ति की भावना को दृढ़ किया तथा इनके राजनीतिक गुरू बने।

अपने सशस्त्र क्रांतिकारी आन्दोलन के समय में श्री चतुर्वेदी जी को सन् 1905 ई. से 1912 ई. तक शिक्षक का व्यवसाय अपनाना पड़ा। सन् 1907 ई. में जब वे 'मसन' कस्बे से खण्डवा के स्कूल में अध्यापक होकर आए तो वे जल्दी ही खण्डवा और मध्यप्रदेश के अच्छे कवि के रूप में मशहूर हो गए। साहित्य और पत्रकारिता के क्षेत्र में ये इतने आगे बढ़ चुके थे कि इनके सामने यह प्रश्न उपस्थित हुआ–ये सरकारी नौकरी में रहें या स्वतंत्र वाणी और मुक्त जीवन को स्वीकार करें। इन्होंने दूसरे जीवन को ही पसन्द किया और 1913 में अध्यापन के व्यवसाय को सदा–सदा के लिए नमस्कार कर दिया।

जीवन, साहित्य और राजनीति की चिन्ता में दिन–रात व्यस्त रहने के कारण माखनलाल जी अपने परिवार की ओर समुचित ध्यान नहीं दे पाते थे। उनका दिन कार्यों की व्यस्तता में और रात को अधिकांश समय अध्ययन में बीत जाता था। इस व्यस्त जीवन का परिणाम यह हुआ कि वे अपनी जीवन संगिनी सौ. ग्यारसी बाई की ओर भी अधिक ध्यान नहीं दे पाये। इधर ग्यारसी

बाई राजयक्ष्मा का शिकार बन गई और भीतर–भीतर घुलते–घुलते एक दिन चिर निद्रा में लीन हो गई। माखनलाल जी को उनकी सही दशा का भान तब हुआ जब उन्हें बचाना मानवीय सामर्थ्य के बाहर हो गया था। माखनलाल जी को इसका कितना दुःख और पश्चाताप था कि इसका आभास उस समय लिखी कविता की पंक्ति से हो जाता है –

भाई, छेड़ो नहीं, मुझे खुलकर रोने दो,
यह पत्थर का हृदय आँसुओं से धोने दो।

सन् 1906 ई. से 1920 ई. तक श्री चतुर्वेदी जी निरन्तर क्रांतिकारी दल के लिए कार्य करते रहे। उन्होंने अनेक क्रांतिकारियों को अपनी जान का खतरा लेकर भी शरण दी। कई बार उनके घर और कार्यालय की तलाशी ली गई।

सन् 1919–20 में माखन लाल जी के जीवन में एक नया मोड़ आया। भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी का प्रवेश हो गया था। उन्होंने काशी विश्वविद्यालय में क्रांतिकारियों को निःशस्त्र आने का निमंत्रण दिया। माखनलाल जी भी वहाँ पहुँचे और गांधी जी की बातों से इतने प्रभावित हुए कि उनके अनुयायी बनकर लौटे।

माखनलाल जी का जीवन और साहित्य दोनों ही राष्ट्र सेवा के लिए समर्पित था। अपने जीवन में वे राष्ट्रीय
आन्दोलनों में हिस्सा लेते रहे, पहले हिंसावादी क्रांतिकारी दल में दीक्षा लेकर और बाद में गांधी जी के अहिंसात्मक सत्याग्रही बनकर। इन्होंने जहाँ कविता के माध्यम से राष्ट्रभक्ति के भाव व्यक्त किये वहीं पत्रकारिता के माध्यम से देश की राजनीति में योग दिया। अपने पत्र और लेखों द्वारा ब्रिटिश शासन का खूब विरोध किया। इनकी विद्रोहात्मक लेखनी से ब्रिटिश शासन घबरा गया और सन् 1921, 1922 और 1927 में राजद्रोह के अभियोग में इन्हें कारागार भेजता रहा। स्वतंत्रता आन्दोलन को सक्रिय प्रेरणा देने की प्रवृत्ति उनके काव्य में ही नहीं बल्कि उनके जीवन में भी मिलती है। जेल–यात्रा उनके लिए गौरव–यात्रा थी, इसीलिए उन्होंने कहा–

'क्या ? देख न सकती जंजीरों का गहना।
हथकड़ियाँ क्यों ? यह ब्रिटिश राज का गहना।'

माखनलाल चतुर्वेदी एक ओर तो गांधीवाद का अनुगमन करते थे तो दूसरी ओर क्रांतिकारियों के प्रति स्नेह भी रखते थे। बलिदानी वीरों के प्रति उनके मन में गहरी आत्मीयता थी। अतः वे जहाँ क्रांतिकारियों को सहायता पहुँचाते थे वहीं दूसरी ओर असहयोग आन्दोलन और राष्ट्रीय गतिविधियों में सक्रिय हिस्सा भी लेते थे। सरकार की इन पर कड़ी नजर थी। अपने भाषणों के क्रम में इन्होंने जबलपुर में अंग्रेजी शासल के खिलाफ आवाज उठाई। परिणामस्वरूप 12 मई 1930 को उन पर पुनः राजद्रोह का अभियोग लगाया गया और जबलपुर में उन्हें एक मास की सजा हुई।

राजनीतिक नेता, पत्रकार, कवि तथा गद्यकार के रूप में इन्होंने देश और साहित्य की सेवा की। इस कारण ये लोकप्रिय हुए। अनेक संस्थाओं ने इनका स्वागत किया। लोगों ने इन्हें सम्मान दिया।

1943 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने 'हिमकिरीटनी' पर उन्हें देव पुरस्कार दिया। हरिद्वार में उनका चांदी के सिक्कों से तुलादान हुआ।

1947 में उन्हें "साहित्य वाचस्पति' उपाधि प्रदान की गयी।

1954 में 'साहित्य अकादमी' की ओर से 'हिमतरंगिनी' पर 5,000 रुपयों का राष्ट्रीय पुरस्कार दिया गया।

1963 में गणतंत्र दिवस पर भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन ने व्यक्तिगत गुणों के लिए इन्हें पद्मभूषण की उपाधि प्रदान की। परन्तु जब भारतीय संसद में हिन्दी को पूर्णतः राष्ट्रभाषा बनने की अवधि में परिवर्तन करने के लिए विधेयक पारित किया गया तो उसके विरोध में इन्होंने वह सम्मान लौटा दिया। वे आजीवन आर्थिक संघर्ष से जूझते रहे। परन्तु जीवन के अंतिम क्षण तक उनका मनोबल शिथिल नहीं हुआ। शरीर के थक जाने पर भी वे मन से चिर युवा बने रहे। अपने अन्तर्मन के उत्साह को प्रकट करते हुए उन्होंने 'माता' में लिखा है –

'कौन कहता है कि तुम वृद्धत्व मेरे पास आये।'

भावनाओं की तरुणाई चतुर्वेदी जी की सांसों की प्रथम और अंतिम शक्ति थी। वे मन से चिर युवा थे। उनका उत्साह युवकों के लिए स्पृहणीय था। जीवन के संघर्षों के बीच सब कुछ उत्सर्ग कर दिनांक 30 जनवरी 1968 को उन्होंने खण्डवा में अपने निवास स्थल पर प्राण त्याग दिये। उन्हीं के शब्दों में उनके जीवन को यदि कहना चाहें तो हम कह सकते हैं –

सूली का पथ ही सीखा है
सुविधा सदा बचाता आया।
मैं बलिपथ का अंगारा हूँ
जीवन ज्वाल जगाता आया।

रचनायें :

1. कृष्णार्जुन युद्ध नाटक, सिरजन और मंचन 1916, प्रकाशन (पुस्तकाकार) 1918 ई.।

2. हिमकिरीटिनी (कविता संग्रह) 1943 ई.।

3. साहित्य–देवता (निबन्ध संग्रह) 1948 ई., यद्यपि इसके अधिकांश निबन्ध 1921–22 में विलासपुर जेल में लिखे गए थे।

4. हिमतरंगिनी (कविता–संग्रह) 1949 ई.।

5. माता (कविता–संग्रह) 1951 ई.।

6. युग चरण (कविता–संग्रह) 1956 ई.।

7. समर्पण (कविता–संग्रह) 1956 ई.।

8. अमीर इरादेः गरीब इरादे (निबन्ध–संग्रह) 1960 ई.।

9. वेणु लो गूंजे धरा (कविता–संग्रह) 1960 ई.।

10. समय के पाँव (संस्मरणात्मक निबन्ध) 1962 ई.।

11. चिन्तन की लाचारी (भाषण–संग्रह) 1965 ई.। 1

12. बीजुरी काजल आँज रही (कविता–संग्रह) 1980 ई., (जिसमें 1955 से 64 के बीच रची रचनाएँ हैं।)

13. रंगों की बोली (निबन्ध–संग्रह) 1982 ई. (जिसमें बहुत पुराने 1944 तक के निबन्ध भी हैं।)

बोध प्रश्न–1

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दें।

1. राष्ट्रीय चेतना की कविता जन जीवन को किस रूप में प्रभावित करती है ?

....

....

2. वे कौन–कौन से सुधारवादी आन्दोलन थे जिसने स्वतंत्रता पूर्व की राष्ट्रीय चेतना को प्रभावित किया।

....

....

बोध प्रश्न–2

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दें।

1. माखनलाल चतुर्वेदी का जन्म कब और कहाँ हुआ था?

....

....

2. उन्हें किन–किन भाषाओं का ज्ञान था?

....

....

3. उनके जीवन पर किन–किन महापुरुषों का प्रभाव पड़ा?

....

....

बोध प्रश्न–3

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दें।

1. माखनलाल चतुर्वेदी ने किन–किन पत्रों का संपादन किया?

   ....

   ....

   ....

2. पत्रकारिता के क्षेत्र में वे किन–किन विभूतियों के निकट संपर्क में आये?

   ....

   ....

   ....

3. वह कौन–सा पत्र था जो उन दिनों राष्ट्रीय जागरण का अग्रदूत था?

   ....

   ....

   ....

बोध प्रश्न–4

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दें।

1. माखनलाल चतुर्वेदी किस उपनाम से विख्यात हुए?

   ....

   ....

   ....

2. चतुर्वेदी जी की कविताओं के भावपक्ष को किन–किन रूपों में बाँटा जा सकता है?

   ....

   ....

   ....

3. चतुर्वेदी जी की कविताओं में लोक जीवन का प्रभाव किस रूप में है?

   ....

   ....

   ....

बोध प्रश्न – 5

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दें।

1. इनकी प्रमुख कविताओं के नाम बताइये जो इनकी राष्ट्रीय भावना और कवि व्यक्तित्व की वीरता को
   उजागर करती है।

   ....

   ....

   ....

2. 18 फरवरी 1922 को विलासपुर जेल में इन्होंने कौन सी प्रसिद्ध रचना लिखी थी ?

   ....

   ....

   ....

बोध प्रश्न – 6

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दें।

1. कोयल की वाणी को कवि रणभेरी क्यों कहता है?

   ....

   ....

   ....

2. 'पुष्प की अभिलाषा' के माध्यम से किसकी अभिलाषा व्यक्त हुई है?

   ....

   ....

   ....

3. निम्नलिखित पंक्तियों का अर्थ स्पष्ट कीजिए –
   (i) मुझे नसीब कोठरी काली
   (ii) रोना भी है मुझे गुनाह

7.4 पत्रकारिता और माखनलाल चतुर्वेदी

श्री माखनलाल चतुर्वेदी निर्भीक पत्रकार भी थे। पत्रकार के रूप में उनका व्यक्तित्त्व शत–शत अवरोधों के सामने न तो झुका और न ही बिका और 1913 में जब श्री कालूराम गंगराडे ने 'प्रभा' मासिक का प्रकाशन किया तो इन्होंने 30 रुपये मासिक वेतन पर सहायक संपादक के रूप में अपने आपको पूर्ण रूप से इस कार्य से जोड़ दिया। इनमें मुख्य थे–श्री माधवराव सप्रे, श्री गणेश शंकर विद्यार्थी, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, महात्मा मुंशीराम तथा पंडित विष्णु दत्त शुक्ल। 'प्रभा' के माध्यम से माखनलाल जी ने राष्ट्रीय और सामाजिक जागरण का कार्य संपन्न किया।

माखनलाल जी ने तन–मन से 'प्रभा' की सेवा की परन्तु अनेकानेक कठिनाइयों के कारण 'प्रभा' बारह अंक प्रकाशित होने के बाद बंद हो गई। बन्द होने का विशेष कारण था कि मध्यप्रान्त में हिन्दी का कोई अच्छा प्रेस न था और 'प्रभा' पूना से छपती थी। अतः अनेकानेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। एक वर्ष बाद गणेश शंकर विद्यार्थी के प्रयत्नों से 'प्रभा' फिर कानपुर से प्रकाशित हुई। 'प्रभा' के संपादन एवं प्रकाशन में वे इतने तल्लीन हो गए कि उन्होंने घर–गृहस्थी के सुखों को त्याग दिया तथा अपनी पत्नी की आहुति भी प्रभा की पत्रकारिता के यज्ञ में चढ़ा दी। परन्तु आर्थिक संकटों के कारण एक वर्ष बाद 'प्रभा' पुनः बंद हो गई। 'प्रभा' की विभिन्न सम्पादकीय टिप्पणियाँ और विविध विषयों पर आपके विचार आज साहित्य की अक्षय निधि हैं।

'प्रभा' की अकाल मृत्यु माखनलाल जी के संकल्प और शक्ति को नहीं तोड़ पाई। कालान्तर में वही निष्ठा 'कर्मवीर' में प्रतिफलित हुई। 17 जनवरी, 1920 को जबलपुर से साप्ताहिक 'कर्मवीर' निकला। इसके प्रधान सम्पादक श्री सप्रे जी तथा सम्पादक माखनलाल चतुर्वेदी थे। इस समय तक (1920) चतुर्वेदी जी सशस्त्र क्रांति के विचारों की सक्रियता से विश्राम लेकर गांधी जी की राजनीति में सहयात्री हो गए थे। 'कर्मवीर' नामकरण का भी अपना इतिहास है। पत्र का नामकरण एक ऐसे लोकनायक जीवित व्यक्ति के अनुरूप रखना था जो राष्ट्र के जीवन में नवीन चेतना भर रहा था। उन दिनों महात्मा गांधी जनजीवन में कर्मवीर मोहनदास कर्मचंद गांधी कहलाते थे अतः जन–जीवन में नवीन क्रांति उत्पन्न करने के पवित्र उद्देश्य से नये साप्ताहिक का नाम 'कर्मवीर' रखना माखनलाल जी का ही व्यक्तिगत साहस था।

'कर्मवीर' ने देशी रियासतों के दुराचारी राजा–महाराजाओं का खूब भंडा–फोड़ किया। मध्यभारत के एक महाराजा ने उन्नीस हजार रुपये देकर 'कर्मवीर' का मुँह बन्द करना चाहा, किन्तु चतुर्वेदी जी ने आर्थिक कठिनाइयों के होने पर भी इस धनराशि को ठुकरा दिया और 'कर्मवीर' का ईमान बेचने से इन्कार कर दिया। यह पत्र बहुत समय तक देशी राज्यों की प्रजा का मुखपत्र बना रहा। एक बार तो अठारह रियासतों ने इसका प्रवेश बन्द कर दिया परन्तु फिर भी इन्होंने बड़े साहस से स्थिति का सामना किया।

'कर्मवीर' साप्ताहिक और 'प्रभा' में चतुर्वेदी जी की प्रायः वे सभी कविताएँ प्रकाशित हुई थीं, जिन्होंने तत्कालीन हिन्दी काव्य में, क्रांतिकारी एवम् राष्ट्रीय विचारधारा को एक विशिष्ट काव्य प्रवृत्ति के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। सन् 1920 ई. में वे झण्डा–सत्याग्रह में गिरफ्तार हुए और नागपुर जेल के अपने कारावास काल में, उन्होंने शहीद सत्याग्रही हरदेव नारायण सिंह की स्मृति में 'झण्डे की भेंट' नामक अपनी प्रसिद्ध कविता लिखी जो 'प्रभा' के झण्डा अंक में प्रकाशित हुई थी, उसकी कुछ पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं –

ले झण्डा, चल पड़ा, प्राण का मोह छोड़, वह तरुण युवा।
उसकी गति पर अहा। देश के अमरों को भी क्षोभ हुआ।
सजा हुई, जंजीरें पहनी, दुर्बल था, पर वार हुए,
मिट्टी, मोट, चक्कियाँ, कोल्हू, हँस–हँस कर स्वीकार हुए।
मातृभूमि। मैं तेरी सूरत देख, सभी सह जाऊँगा।
दे लें दण्ड, आर्यबालक हूँ, मस्तक नहीं झुकाऊँगा।

जेल से छूटते ही चतुर्वेदी जी पुनः 'कर्मवीर' के सम्पादन में प्राणपण से जुट गए। उस समय असहयोग आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर था और 'कर्मवीर' के सम्पादकीय लेखों ने उसे

मध्यप्रदेश में तीव्रतर बनाने में भारी योगदान दिया था। 12 मई, 1921 ई. की रात को पुलिस उन्हें 'कर्मवीर' कार्यालय से हथकड़ी लगाकर ले गई और उन्हें कठोर कारावास का दंड मिला।

'प्रभा', 'कर्मवीर' और 'प्रताप' के माध्यम से उन्होंने देश की जनता में व्याप्त जड़ता को तोड़ा एवं क्रांति का संदेश दिया। इस दृष्टि से कर्मवीर मध्य प्रदेश की पत्रकारिता की एक विशिष्ट उपलब्धि है। उनकी पत्रकारिता ने आत्मशौर्य एवं अपराजेय भावना को जन–जन में भरा और लेखकों, कवियों तथा पत्रकारों की एक ऐसी पीढ़ी तैयार की जिनकी अभिव्यक्ति निरन्तर आग से नहाती रही। पत्रकारिता के क्षेत्र में श्री माखनलाल चतुर्वेदी का योगदान ऐतिहासिक महत्व रखता है।

7.5 चतुर्वेदी जी के काव्य का भाव–पक्ष

चतुर्वेदी जी की कविताओं का अनुशीलन करने पर 'ज्ञात' होता है कि उनके हृदय में प्रेम की एक अखंड एवं अनन्त धारा प्रवाहित हो रही थी। यह प्रेम कहीं श्रृंगार–भावना के रूप में है और कहीं भगवद् भक्ति के रूप में। अतः इनकी कविताओं में व्यक्त अनुभूतियों को हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं–

1) अलौकिक प्रेम या रहस्य भावना
2) भगवद् प्रेम या भक्ति–भावना
3) स्वदेश प्रेम या राष्ट्रीय भावना

अलौकिक प्रेम

चतुर्वेदी जी के काव्य में अलौकिक प्रेम को मान्यता मिली है। कवि असीम की सत्ता में विश्वास करता है। यह प्रेम तत्व सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में है क्योंकि वह प्रेम जगदीशमय है –

है कौन–सा वह तत्व, जो सारे भुवन में व्याप्त है
ब्रह्माण्ड पूरा भी नहीं जिसके लिए पर्याप्त है
है कौन–सी वह शक्ति क्यों जी कौन सा वह भेद है
बस ध्यान ही जिसका मिटाता आपका सब शोक है
वह प्रेम है, वह प्रेम है, वह प्रेम है, वह प्रेम है
है अचल जिसकी मूर्ति, हाँ, हाँ अटल जिसका नेम है।

अलौकिक प्रेम की व्यापकता का बौध कराने के लिए कवि कहता है –

यह व्याप्त है सब में अजी यह सभी का आधार है
पाठक महोदय! अधिक क्या यह स्वर्ग सुख का द्वार है
जगदीशमय है प्रेम निश्चय, प्रेममय संसार है।

वह अव्यक्त समस्त प्रकृति में व्याप्त होते हुए भी कवि को कभी दूर प्रतीत होता है और कभी पास –

यौवन के छल की तरह दूर, कलिका से फल की तरह दूर

सीपी की खुली पंखुड़ियों से स्वाती के जल की तरह दूर।
ताड़ित तंरग की तरह पास, अधकटे अंग की तरह पास
उल्लास श्वास की तरह नहीं, पागल उल्लास की तरह पास।

कवि एक अव्यक्त सर्वव्यापक तत्व को ऐसे प्रियतम के रूप में मानता है कि उसे यह कहना अच्छा लगता है—

तुम्हारे खो जाने में दुख, तुम्हारे पा जाने में आज।
भूमि का मिल जाता है छोर, गगन का मिल जाता है राज।

चतुर्वेदी जी की बहुत सी रचनाएँ देशकाल से परे शाश्वत भावों को अभिव्यक्त करती हैं। चतुर्वेदी जी ने प्रकृति के नैसर्गिक आनन्द का अनुभव किया और प्रकृति में व्याप्त रहस्य को अपने काव्य में चित्रित किया। अलौकिक प्रेम द्वारा मानवीय एकता को बनाये रखने का प्रयास किया।

भगवद् प्रेम या भक्ति भावना

माखनलाल चतुर्वेदी की भगवद् भक्ति के आलम्बन हैं 'श्रीकृष्ण'। उनकी कविताओं में कृष्ण भावना और राष्ट्रीयता की भावना अलग—अलग न रहकर एक रूप हो गई है। माखनलाल जी अपने देश की धरती से श्यामल प्रभु की गाँठ बांधते हैं —

श्यामल प्रभु से, भू की गांठ बांधती, जोरा—जोरी
सूर्य किरण ये, यह मन—भावनि, यह सोने की डोरी,
छनक बांधती, छनक छोड़ती, प्रभु के नव—पद—प्यार
पल—पल बहे पटल पृथिवी के दिव्य—रूप सुकुमार।

उनके लिए देश की माटी है माखन और कृष्ण, धूल—धूसरित वेश है भारत माँ का मैला आंचल। वे कहते हैं—

माखन? भले माटी भले—हो धूलिधूसर वेश।
खाऊँ, खिलू, गाऊँ तुम्हारे विजयगीत स्वदेश।

'मुक्ति का द्वार' शीर्षक कविता में वे भारत के तीस करोड़ लोगों को बन्दी के रूप में देखते है तथा उसके द्वार के खुलने की प्रार्थना श्यामल प्रभु से करते हैं—

अरे कंस के बन्दी—गृह की,
उन्मादक किलकार।
तीस करोड़ बंदियों का भी
खुल जाने दे द्वार।

तिलक की मृत्यु पर उन्होंने कविता लिखी, जिसमें पहली बार वे इस संदर्भ का उल्लेख करते हैं—

दुखियों के जीवन लौट पड़ो, मेरे घन—गर्जन लौट पड़ो।
जसुदा के मोहन लौट पड़ो, सित काली—मर्दन लौट पड़ो।

राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए गोवर्धन पर्वत उठाने में वे अद्वितीय पराक्रम देखते हैं। सदियों से पददलित और अपमानित देश के लिए साहस के शैल को उठाने की जरूरत है। वे वनमाली से प्रार्थना करते हैं कि –

ब्रज की रज खाने को जाओ, प्रेम प्रवाह बहाने को
छगुनि शिखा पर साहस का यह भारी शैल उठाने को।

इस प्रकार कृष्ण के जीवन के अनेक प्रसंग स्वाधीनता संग्राम में सार्थक हो गए। श्री कृष्ण उनके आराध्य इसलिये हैं कि वे राष्ट्रीय स्वाधीनता में उनके प्रेरक बनते हैं। उपासना और संघर्ष एक बिन्दु पर मिल जाते हैं।

स्वदेश प्रेम या राष्ट्रीय चेतना

राष्ट्रीय चेतना का अत्यन्त उदात्त स्वर माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य में मिलता है। वे कवि के रूप में 'भारतीय आत्मा' के नाम से विख्यात थे, उनका काव्य सच्चे अर्थों में भारतीय आत्मा की अभिव्यक्ति है। 'भारतीय आत्मा' का समस्त जीवन राष्ट्र के लिए समर्पित रहा। राष्ट्रीय चेतना के कवियों में माखनलाल चतुर्वेदी का शीर्ष स्थान है।

भारतीय साहित्य में राष्ट्रीय जागरण, त्याग–बलिदान एवं सांस्कृतिक गौरवाभिमान की दृष्टि से चार गीत विशेष महत्व रखते हैं। वे हैं–राष्ट्रगान (जन गन मन), वंदेमातरम्, सारे जहाँ से अच्छा तथा पुष्प की अभिलाषा। इन गीतों में चतुर्थ गीत माखनलाल चतुर्वेदी की वाणी से निःसृत हुआ। संसार के किसी अन्य कवि ने स्वदेशी की स्वतंत्रता के लिए आत्म–बलिदान की ऐसी कामना नहीं की है–

चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूंथा जाऊं।
चाह नहीं प्रेमी–माला में विंध प्यारी को ललचाऊं।
चाह नहीं सम्राटों के शव पर हे हरि डाला जाऊं।
चाह नहीं देवों के सिर पर चढ़ूँ भाग्य पर इठलाऊं।
मुझे तोड़ लेना बनमाली उस पथ पर देना तुम फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जावें वीर अनेक।

'भारतीय आत्मा' के काव्य में सर्वत्र राष्ट्रीय चेतना का ज्वालामुखी धधक रहा है। यह ज्वालामुखी अंग्रेजों के पाषाणी शासन को खण्ड–खण्ड कर सात समुद्र पार फेंक देना चाहता है। वे एक वीर सिपाही के रूप में सदैव राष्ट्र मुक्ति के युद्ध में सन्नद्ध खड़े अपने सेनापति के आदेश की प्रतीक्षा करते हैं–

बोल अरे सेनापति मेरे मन की घुण्डी खोल।
जल–थल–नभ हिलडुल जाने दे तू किंचित मत डोल।
दे हथियार या कि मत दे तू पर तू कर हुंकार।
ज्ञातों को मत, अज्ञातों को तू इस बार पुकार।

वे सिर पर प्रलय लिए और नेत्रों में मस्ती भरे एक वीर सिपाही के रूप में सदैव राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम में लक्ष्य–प्राप्ति हेतु अटल खड़े हैं–

सिर पर प्रलय नेत्र में मस्ती

मुट्ठी में मनचाही
लक्ष्य मात्र मेरा प्रियतम है
मैं हूँ एक सिपाही।

वे राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम के सेनानी से अपनी बलि देने की आज्ञा माँगते हुए कहते हैं–

खिलने के पहले टूटेंगी, तोड़, बता मत भेद।
वनमाली अनुशासन की सूची से अंतर छेद।
श्रम–सीकर, प्रहार से जीकर, बना लक्ष्य आराध्य।
मैं हूँ एक सिपाही, बलि है मेरा अंतिम साध्य।

सैनिक केवल लड़ना और मरना जानता है। ये ही उसके अधीन हैं। इस कार्य में विलम्ब उसे सह्य नहीं होता। यदि सेनानायक उस कार्य में किंचित् विलंब और प्रतिरोध उपस्थित करता है तो उसके प्राण तिलमिला उठते हैं। आखिर वह स्वतंत्रता–संग्राम का सैनिक जो है। जीवन से उसे मोह कैसा। मृत्यु से उसे भय कहाँ। वह तो देह धारण कर भी विदेह हो जाता है। वह तो इतना ही जानता है कि–'मरण के बीच कहाँ विश्राम।' अतः चतुर्वेदी जी कहते हैं –

धीरज रोग, प्रतीक्षा, चिंता, सपने बने तबाही,
ऐ दिलदार द्वार खुलने दे, मैं हूँ एक सिपाही।
युवकों को बलि का संदेश देते हुए वे कहते हैं –
ये न मग हैं, तब चरण की रेखियाँ हैं
बलि–दिशा की अमर देखा–देखियाँ हैं
विश्व पर पद से लिखे कृति–लेख हैं ये
धरा–तीर्थों की दिशा की मेख हैं ये।
प्राण–रेखा खींच ये, उठ बोल रानी
री मरण के मोल की चढ़ती जवानी।
x x x

खून हो जाये न तेरा देख, पानी
मरण का त्योहार, जीवन की जवानी।

वस्तुतः मरण का त्योहार मनाने का जो दिव्य स्वर चतुर्वेदी जी के काव्य में निनादित हुआ है वह अन्यत्र नहीं। चतुर्वेदी जी मूलतः बलि के कवि थे, सच्चे अर्थ में वे बलि–पंथी थे –

द्वार बलि का खोल चड़ भूडोल कर दें
एक हिमगिरि एक सिर का मोल कर दें
मसल कर अपने इरादों सी उठाकर
दो हथेली है कि पृथ्वी गोल कर दें,
रक्त है या है नसों में क्षुद्र पानी
जाँच कर तू सीस दे देकर जवानी।

स्वतंत्रता आन्दोलन को सक्रिय प्रेरणा देने की प्रवृत्ति उनके काव्य में ही नहीं मिलती बल्कि उनके जीवन में भी मिलती है। उन्होंने स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लिया और अनेक बार जेल यात्रा की। जेल–यात्रा उनके लिए गौरव यात्रा थी –

'क्या ? देख न सकती जंजीरों का गहना।
हथकड़ियाँ क्यों ? यह ब्रिटिश राज का गहना।'

जो कवि बलिदान की भावना को लेकर मृत्यु का जयगान कर रहा हो, जिसकी वाणी और जीवन में कोई अन्तर न हो, जो स्वयं राष्ट्रीय–पथ का सच्चा पथिक हो उस कवि के काव्य की ओजस्विता का क्या कहना। बलिपन्थी कारागार को कृष्ण मन्दिर, हथकड़ी को माता, पृथ्वी को शैया और आकाश को आच्छादन मानकर अपने नाम के संकेत पर सुरपुर तक को ठुकराकर राष्ट्र के लिए स्वयं को अर्पित कर देने के लिए पूरी तरह तत्पर हो रहे थे और ये भाव इसके लिए उन्हें प्रेरणा दे रहे थे –

'कागों का सुन कर्तव्य राग, कोकिल–कलरव को भूल–भूल,
सुरपुर ठुकरा, आराध्य कहे तो चल रौरव के कूल–कूल,
भूखण्ड बिछा, आकाश ओढ़, नयनोदक में, मोदक प्रहार
ब्रह्माण्ड हथेली पर उछाल, अपने जीवन–धन को निहार।'
उनकी कविताओं में निष्कपट देश प्रेम आभव्यक्त हुआ है –
बलिशाला ही हो मधुशाला
प्रियतम पथ हो देश निकाला
प्राणों का आसव हो ढाला
गिरे न उसमें दाग री

चतुर्वेदी जी ने मानव–जीवन की उस अनुभूति को अभिव्यक्ति दी है जिसके कारण सोया राष्ट्र जाग उठता है। 'अमर राष्ट्र' कविता में कवि के ओजस्वी भाव व्यक्त हुए हैं–

मैं यह चला पत्थरों पर चढ़, मेरा दिलवर यहीं मिलेगा।
फूंक जला दें सोना–चाँदी तभी क्रान्ति का सुमन खिलेगा ?
चट्टानें चिंघाड़ें हँस–हँस सागर गरजे मस्ताना–सा,
प्रलय राग अपना भी उसमें, गूँथे चले ताना–बाना–सा।

जो काल के विकराल रूप पर अपने चिह्न अंकित कर युग को सहज तथा प्रेरित करता है वह 'युग कवि' कहलाता है। पं. माखनलाल चतुर्वेदी का कवि एक ऐसा ही युगकवि है, जिसने अपने युग की आत्मा को पहचानकर उसे वाणी के स्वर दिये हैं।

युग के सत्य को प्रकट करते हुए कवि कहता है–
मातृभूमि है उसकी, जिसको उठ जीना आता है,
दहन–भूमि है उसकी, जो क्षण–क्षण गिरता जाता है।

सच्चा राष्ट्रकवि सच्चे जननायक से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। अपनी कविता के द्वारा राष्ट्रनायक के संदेशों को जन–जन तक पहुँचाने का गुरुतर दायित्व कवि ग्रहण करता है। चतुर्वेदी जी ने पूज्य बापू को अपनी युग–चेतना और राष्ट्रीय भावना के प्रतीक के रूप में देखा था। अतः उन्होंने बापू के प्रति कहा था –

युग तुम में तुम युग में कैसे झांक रहे हो बोलो।
उथल–पुथल तब हो कि समय में जब तुम जीवन घोलो।
तुम कहते हो बलि से पहले अपना हृदय टटोलो

युग कहता है क्रांति–प्राण पहिले बंधन तो खोलो।
x x x
कंठ भले हों कोटि–कोटि तेरा स्वर उनमें गूंजा
हथकड़ियों को पहन राष्ट्र ने पढ़ी क्रांति की पूजा।

यह गाना राष्ट्रीय धारा के सशक्त कवि माखनलाल चतुर्वेदी स्वाधीनता संग्राम काल के समस्त भारतीय काव्य में अन्यतम स्थान के अधिकारी हैं। 'भारतीय आत्मा' ने वास्तव में अपना समस्त जीवन राष्ट्र के लिए समर्पित कर दिया था। उनका हर शब्द, हर भाव और हर कार्य राष्ट्रीय चेतना की अनुगूंज होता था। वे आरंभ से लेकर अंत तक राष्ट्रीयता का ही अलख जगाते रहे। राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्रीय भावना के एक चतुर चितेरे के रूप में उन्होंने भारत के परंपरागत आदर्श, त्याग, बलिदान और गांधीवाद के विचार को बड़े सुदर ढंग से चित्रित किया। वास्तव में चतुर्वेदी जी की रचनायें राष्ट्रीय वेदना, शौर्य और उदात्त भारतीय संस्कृति की आंतरिक चेतना को अभिव्यक्त करने में बेजोड़ हैं।

7.6 माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य का रचना–शिल्प

चतुर्वेदी जी उस युग के कवि थे जिस युग ने काव्य–निर्माण की नींव डाली। चतुर्वेदी जी द्विवेदी कालीन प्रमुख कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त के साथ ही हिन्दी साहित्य में आये और उनके ही समान छायावाद की सीमा को पार करके कई दशकों तक हिन्दी काव्य को समृद्ध करते रहे। अतः चतुर्वेदी जी की द्विवेदी कालीन रचनाएँ अपने शिल्प में सरल होते हुए भी बड़ी ही मार्मिक हैं। 'जवानी' शीर्षक रचना में प्राकृतिक चित्रों के सहारे कवि ने युवावस्था का सुन्दर चित्र खींचा है –

वह कली के गर्भ से फल–रूप में, अरमान आया।
देख तो मीठा इरादा किस तरह, सिर तान आया।
x x x
फल दिये ? या सिर दिये ? तरू की कहानी
गूंथ कर युग में, बताती चल जवानी।

ऐसी रचनाओं में शिल्पगत लाक्षणिकता के स्थान पर सहज अभिव्यक्ति ही काव्य–सौंदर्य को आकर्षक बनाती है। इन रचनाओं में विद्वत्ता–प्रदर्शन अथवा चमत्कार निर्माण की प्रवृत्ति नहीं है।

चतुर्वेदी जी की भाषा सरल, सीधी और मुहावरेदार है, जो अभीष्ट विषय को ओजस्वी और सशक्त रूप प्रदान करती है। शैली में कहीं उद्बोधन है, कहीं भाषण कला की विशेषताएँ हैं तो कहीं–कहीं उपदेशात्मकता की शुष्कता भी है। कवि युग पुरुष को संबोधित करते हुए कहता है–

उठ–उठ तू, ओ तपी तमोमय जग उज्जवल कर।
गूंजे तेरी गिरा कोटि भवनों में घर–घर।
x x x
तू युग की हुंकार, अमर जीवन की वाणी,

तेरी सांसों में अमर हो उठे युग–कल्याणी।

कवि की संबोधन–शैली आत्मीयता की भावना जगाती है। कभी–कभी कवि की अभिलाषा, प्रकृति की अभिलाषा के रूप में प्रकट हई है, जैसे 'पुष्प की अभिलाषा', 'वृक्ष की अभिलाषा' आदि में। चतुर्वेदी जी ने अपनी रचना में राष्ट्रीय–सामाजिक चेतना उदबुद्ध करने के लिए आग, ज्वाला, चिनगारी, श्मशान, पेड़–पौधे, हिमालय की हुंकार, समुद्र–गर्जन, बादल, अंकुर, हरियाली, पौराणिक प्रसंग, ऐतिहासिक प्रसंग, अमृत–विष आदि नित्य जीवन परक, प्राकृतिक और सांस्कृतिक बिम्बों और प्रतीकों की योजना की है।

माखनलाल जी साहित्य के जनता से कटे रह जाने, संग्रहालय की वस्तु बन जाने के खतरों को समझते हुए सरल भाषा के व्यवहार के प्रबल पक्षधर हैं।

चतुर्वेदी जी की कविता में ध्वनि संयोजना, पद संयोजना या शब्द योजना और वाक्य योजना के विविध स्तर इस रूप में मिलते हैं–

ध्वनि संयोजना

चतुर्वेदी जी की रचना में साधारण हिन्दी भाषा और लोकभाषा की ध्वनियों के प्रयोग मिलते हैं वे ध्वनियाँ हैं–गूंज उत्पन्न करने के लिए वर्णद्वित्व यथा–अन्न, मरणासन्न। अनुनासिकता–आँज, साँझ।

'ण' ध्वनि के प्रचुर प्रयोग–वेणु, रेणु, प्रणय, वाणी।

पद या शब्द योजना

चतुर्वेदी जी प्रायः संस्कृत से आगत तत्सम पद योजना का अधिक प्रयोग करते हैं–हिमगिरि, हिमशैल, हिमकिरीटिनी, हिमतरंगिनी, शिर, सुजन, सृजन, मुक्ति, ब्रह्माण्ड, पथ, बेला, अस्तित्व, रजतक्षण, संचार, व्रत, वैभव, उन्माद, प्रयास, उपहास, यौवन, वर, धूम्र–वलय, अणु, प्रणय, स्वेद, अणिमा, वाणी, प्रकाश जैसे तत्सम पद या शब्द उनकी कविता में बहुत प्रभुक्त हुए हैं। उनकी रचनाओं में तत्सम प्रकृति के पद–बंध भी मिलते हैं जैसे–मानव–हृदय, मुग्ध–संस्कार, राष्ट्र–वाणी, रजत–मुकुट, प्राण–रेखा, अखिल–जगतीतल, किरणबेला, मिलन–बेला, रजत–क्षण, अमर–रस, रवि–रथ, धूम्र–वलय, संकट–दल, अमित–अभिमान, पति–प्रकृति, स्वेद–कण, मौन–पुकार, गगन की रानी।

पद–संयोजना और भावानरूप क्रियापद निर्माण में उन्होंने तत्सम–तद्भव देशी और विदेशी शब्दों का मेल भी किया है जैसे–भूडोल करदे, मोल करदे, इरादों सी उठाकर, पृथ्वी गोल करदे, छलक–छलक बन छन्द, कोल्हूकी चर्रक–चूँ, जीवन की तान, अकड़ का कुँआ, हड्डियों का स्वाद, दुःख भोगी प्यारे, दहलता नभ मंडल, हरिया उठना, उतर जी पर, नसीब कोठरी काली, कल्पना पर चढ़।

तुक और ताल के खिलाफ निरंतर चल रहे सशक्त आन्दोलन के चलते हुए भी चतुर्वेदी जी की कविता में तुक और ताल निरन्तर बने रहे हैं। उनकी कविताओं में लय और छन्द की झंकार हमेशा बनी रही है।

माखनलाल चतुर्वेदी जी की कविताओं की रचना धर्मिता को देखने पर एक बात और ध्यान आकर्षित करती है कि अपनी कविताओं में वे प्रश्नवाचक वाक्यों का बहुत अधिक प्रयोग करते हैं। अधिकांश कविताओं में प्रश्न ही कविता के आधार वन जाते हैं फिर प्रश्न और उत्तर के क्रम में ही कविता पूरी होती है। कविताओं की ऐसी प्रश्न शैली हिन्दी के किसी अन्य कवि में नहीं है

1) सजृन ये कौन खड़े हैं?
2) कौन पथ भूल?
3) सूझों के रवि रथ पर किसने?
4) कैसे दीखे हो मुरलीधर?
5) चुपचाप मधुर विद्रोह बीज इस भांति बो रही क्यों हो? कोकिल बोलो तो।

जैसे प्रश्न उनकी कविताओं में प्रायः ही मिलते हैं। चतुर्वेदी जी का जीवन साधारण लोक–जीवन से अधिक निकट रहा है अतः स्वाभाविक ही था कि वे लोक–जीवन की विशेषताओं को भी आत्मसात करते। अपनी कविता में उन्होंने समय–समय पर लोक–धुनों को भी शामिल किया है। जैसे–स्वतंत्रता–संग्राम के संघर्षमय जीवन में जिस पत्नी को समुचित स्नेह–संरक्षण न दे सके उन्हीं के स्वर्गवास के बाद प्रथम श्राद्ध तिथि पर लिखी कविता में उनके हृदय में बसी लोक–धुन जैसे स्वतः निकल आई है–

> बोलते थे तुम
> अमर रस घोलते थे
> तुम हठीले
> पर हृदय पट तार
> हो पाए कभी
> मेरे न गीले।
> ना, अजी! मैंने
> सुने, तक भी नहीं,
> प्यारे तुम्हारे बोल।
> एक बिरिया, एक बिरिया
> फिर कहो वे बोल।

माखनलाल जी की काव्य–साधना के मूल्यांकन में यह उल्लेखनीय है कि उस युग में हिन्दी कविता घुटरूअन चलने की स्थिति में थी। अतः चतुर्वेदी जी के काव्य का मूल्यांकन कभी भी उन्हें युग से काटकर नहीं किया जा सकता। संक्षेप में, चतुर्वेदी जी हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावनाओं के अमर गायक कवि हैं। उनकी काव्य–सम्पदा भाव और भाषा दोनों दृष्टि से विपुल है। उनकी शैली सर्वथा मौलिक और नूतन है। वे किसी लीक के पुजारी नहीं हैं, यही उनकी विशेषता है।

7.7 माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य का मूल्यांकन

स्व. माखनलाल चतुर्वेदी एक साथ कवि, लेखक, पत्रकार, वक्ता, कहानीकार, नाटककार आदि रूपों में हमारे सामने आते हैं। उनके साहित्य का मूल स्वर राष्ट्रीयता का है। इनकी कविताओं में राष्ट्रीय भावना अनेक रूपों में व्यंजित हुई है। राष्ट्र के प्रति अनुराग, राष्ट्र–सेवकों और नेताओं के प्रति स्नेह और श्रद्धा, देश में जागरण का सन्देश एवं राष्ट्रहित के लिए बलि की भावना इनकी कविताओं में अभिव्यक्त हुई है।

माखनलाल चतुर्वेदी का हृदय सदैव स्वदेश अनुराग से ओत–प्रोत रहा है। यही कारण है कि इनकी कविताओं में भारत का एक प्रतिनिधि कवि पराधीनता के शिकंजे से मुक्त होने के लिए छटपटाता सा जान पड़ता है। कवि की आत्मा 'जवानी' शीर्षक कविता में भारत के युवकों का आह्वान करती है –

प्राण अन्तर में लिए, पागल जवानी।
कौन कहता है कि तू विधवा हुई, खो आज पानी ?

x x x

द्वार बलि का खोल चल, भूडोल कर दें,
एक हिमगिरि एक सिर का मोल कर दें,
मसलकर, अपने इरादों–सी, उठाकर,
दो हथेली हैं कि पृथ्वी गोल कर दें।
रक्त है या है नसों में क्षुद्र पानी ?
जाँच कर, तू सीस दे–देकर, जवानी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पथ पर मरण भी उनके लिए एक त्यौहार है। वे युवकों को बलि का संदेश देते हुए कहते हैं –

खून हो जोय न तेरा देख पानी
मरण का त्यौहार जीवन की जवानी।

माखनलाल चतुर्वेदी देश की राजनीतिक नब्ज को पहचानने वाले पहले हिन्दी साहित्यकार थे। ब्रिटिश साम्राज्य में भारतीय जनता को जिस अत्याचार और दमन का सामना करना पड़ रहा था उसका जीता–जागता चित्र चतुर्वेदी जी की अनेक कविताओं में अंकित हुआ है। कवि ने स्वयं अनेक बार जेल की कठोर यातनायें सही थी यही कारण है कि उनकी कविताओं में कोरी कल्पना ही नहीं है। अनुभूति की सच्चाई के कारण कवितायें और मार्मिक बन गई है।

'मरण–त्यौहार', 'कैदी और कोकिला', 'सिपाही', 'सिपाहिनी', 'जलियाँवाला बाग', 'जवानी', शीर्षक कविताएँ आज भी पाठक के हृदय में राष्ट्रप्रेम की उमंग पैदा करती हैं।

उन्होंने हिन्दू–मुस्लिम एकता की महत्ता को अनुभव किया, पहचाना और भावाकुल अनुरोध किया कि इस भेद–भाव की संकीर्णता में मानव जीवन ही नहीं इस जीवन का जनक भी कलंकित होता है –

मन्दिर में हो चाँद चमकता, मसजिद में मुरली की तान,
मक्का हो चाहे वृन्दावन, होवें आपस में कुरबान।

x x x

हिन्दी माता की दोनों आँख, नाक को रखकर बीचों बीच,
अश्रु की उज्जवल धारा छोड़, प्रेम का पौधा देवें सीच।

यही नहीं इस गुलाम और अनपढ़ देश में मनुष्य को अशिक्षा के अभाव में तिल–तिल पिसते या शोषित होते भी कवि ने देखा। उस शोषण की पीड़ा और कथा को सुना, गुना, गुनगुनाया तथा जन–जन को सुनाया भी –

अन्न नहीं है, फीस नहीं है, पुस्तक है न सहायक हाय,
जी में आता है पढ़ लिख लें, पर इसका है नहीं उपाय।
कोई हमें पढ़ाओ भाई, हुए हमारे व्याकुल प्राण,
हा! हा!! रोते फिरते हैं भारत के भावी विद्वान।

माखनलाल जी की कविताएँ समस्त भारतीय इतिहास की आवाज है। पूरे देश के हृदय को झकझोर देने की उनमें क्षमता है। जो कवि–'ऊंची काली दीवारों के घेरे में, डाक चोरों बरमारों के डेरे में' घिरा रहकर भी हार नहीं मानता और निरंतर कहता है 'खाली करता हूँ ब्रिटिश अकड़ का कुआँ'। यह कवि निश्चित ही धरती का कवि है, जो कहता है–

'धड़ से धड़ को जोड़ बना तू भारत एक अखंडित
तेरे यश का गान करेंगे प्रलय नाद के पंडित।'

'युग और तुम', 'तिलक', 'रोने दो लुट गया आज', 'स्वर्गीय सप्रे जी की महायात्रा पर' तथा 'राष्ट्रीय झण्डे की भेंट' जैसी कविताएँ कवि व्यक्तित्त्व की वीरता को उजागर करती हैं।

'जीवन का फूल' नामक कविता में वे कहते हैं –
"किन्तु कहे देता हूँ तुमसे सब जायेंगे भूल।
तेरे चरणों पर ही अर्पित होगा जीवन फूल।'

स्वातंत्र्य आन्दोलन का इससे अधिक और कहाँ आत्म त्याग एवं आत्म बलिदान का भाव देखने को मिलता है–जहाँ विजय मारने में नहीं अपितु मरने में होती है। वीरता शीश काटने में नहीं बल्कि कटाने में है।

पत्रकारिता के क्षेत्र में श्री माखनलाल चतुर्वेदी का योगदान ऐतिहासिक महत्व का रहा है। उन्होंने 'प्रभा', 'कर्मवीर' और 'प्रताप' के माध्यम से देश और समाज को जागृत करने का अद्‌भुत कार्य किया। इनकी विद्रोहात्मक लेखनी से शासन घबरा गया और 1921, 1922, 1927 में इन्हें कारावास का दंड दिया। पत्रकारिता के क्षेत्र में ये जिन विभूतियों के आत्मीय संपर्क में आए उनमें प्रमुख थे–श्री माधवराव सप्रे, श्री गणेश शंकर विद्यार्थी, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, महात्मा मुंशीराम, तथा पंडित विष्णु दत्त शुक्ल। 'कर्मवीर' साप्ताहिक और 'प्रभा' में माखनलाल जी की जो कविताएँ प्रकाशित हुई उन्होंने उस समय के हिन्दी काव्य में क्रांतिकारी एवं राष्ट्रीय विचारधारा को एक प्रमुख काव्य प्रवृत्ति के रूप में स्थापित कर दिया।

माखनलाल चतुर्वेदी के व्यक्तित्त्व एवं साहित्य की विशिष्टता इस बात में है कि उनकी वाणी और उनके कर्म में अद्भुत समन्वय था। उन्होंने न केवल राष्ट्रीयता की भावना से युक्त साहित्य लिखा बल्कि स्वयं राष्ट्रीय आन्दोलनों में हिस्सा लिया और कई बार जेल गए। जबलपुर जेल में जाने से पहले जब चतुर्वेदी जी विलासपुर जेल में थे तब उन्होंने 18 फरवरी को अपनी सर्वाधिक लोकप्रिय रचना 'एक फूल की चाह' लिखी जो सत्याग्रहियों के लिए सुबह–शाम प्रार्थना जैसी थी। 'हिम–किरीटिनी', 'झरना' आदि अन्य रचनायें भी जबलपुर सेण्ट्रल जेल में लिखी गई थी। ये कवितायें अंग्रेजी शासन द्वारा सत्याग्राहियों के साथ किए जाने वाले व्यवहार की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत करती हैं तथा हिन्दी राष्ट्रीय कविताओं में अपना विशेष महत्व रखती हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि चतुर्वेदी जी ने स्वतंत्रता संग्राम की विस्तृत भावभूमि का निर्माण किया और उसमें लड़ने एवं घूमने वालों की एक ऐसी टोली तैयार की जिसमें अदम्य साहस एवं गहन आत्मविश्वास था। वे देश की स्वतंत्रता संग्राम के अदम्य सेनानी थे, पत्रकारिता के क्षेत्र में राष्ट्र के जागरूक प्रहरी थे, कविता के क्षेत्र में राष्ट्र के बलिदान हो जाने का महान आदर्श प्रस्तुत करने वाले कवि थे। देश प्रेम के उत्कट भावों से उनकी सभी काव्य–कृतियों हिमकिरीटिनी, हिमतरंगिनी, माता, शुभचरण, समर्पण, वेणुलो गूँजे धरा आदि ओत–प्रोत हैं।

7.8 सारांश

- स्वतंत्रता पूर्व हिन्दी कविता पर नवजागरण का प्रभाव व्यापक रूप से पड़ा। विविध सुधारवादी आन्दलनों से देश की जनता में जागृति आयी। अफ्रीका में गांधी जी का अहिंसात्मक प्रतिरोध सफल हुआ जिसने देश की जनता को मानसिक बल प्रदान किया। उसी समय हिन्दी कविता–क्षेत्र में माखनलाल चतुर्वेदी का आगमन हुआ।
- चतुर्वेदी जी का जन्म 4 अप्रैल 1889 को होशंगाबाद के बाबई ग्राम में हुआ था। बचपन से ही चतुर्वेदी जी को देश की मिट्टी से प्यार था और वे क्रांतिकारियों की मदद भी किया करते थे। 1906 में इन्होंने क्रांतिकारी नेता देवसकर से दल की दीक्षा ली। सैयद अलीमीर, स्वामी रामतीर्थ, पं. माधवराज सप्रे और माणकचन्द जैन का उन पर बहुत प्रभाव पड़ा। अपना जीवन और साहित्य इन्होंने राष्ट्र के लिए अर्पित कर दिया। 1906 से 1920 तक ये क्रांतिकारी दल के लिए कार्य करते रहे। 1920 में ये गांधी जी के अनुयायी बने। इन्हें इनकी कृतियों के लिए अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। इनकी मृत्यु सन् 1968 को खण्डवा में इनके निवास स्थान पर हुई।
- माखनलाल चतुर्वेदी एक निर्भीक एवं समर्पित पत्रकार थे। उन्होंने 'प्रभा' और 'कर्मवीर' का संपादन किया। गणेश शंकर विद्यार्थी के जेल जाने पर इन्होंने 'प्रताप' का सम्पादन भी किया। 'कर्मवीर' माखनलाल जी की भावनाओं एवं विचारधाराओं को स्पष्ट करने वाले प्रमुख पत्र के रूप में सामने आता है। इस पत्र का एक–एक शब्द राष्ट्रीय जागरण का जीता–जागता इतिहास है। इनकी विद्रोहात्मक लेखनी से घबराकर ब्रिटिश शासन ने सन् 1921, 1922 एवं 1927 में गिरफ्तार कर उन्हें कारागार में भेज दिया। इन्होंने 'प्रभा', 'कर्मवीर' और 'प्रताप' के माध्यम से देश की जनता को क्रांति का संदेश दिया और लेखकों, कवियों तथा पत्रकारों की ऐसी पीढ़ी तैयार की जिनकी रचनाएँ निरन्तर क्रांति का संदेश देती रहीं।

- चतुर्वेदी जी की कविताएँ मुख्य रूप से तीन भावधारा में विभक्त की जा सकती हैं– (1) अलौकिक प्रेम या रहस्य भावना (2) भगवद् प्रेम या भक्ति–भावना (3) स्वदेश प्रेम या राष्ट्रीय भावना। इनकी कविता का केन्द्रीय भाव राष्ट्रीयता का ही है। राष्ट्र के प्रति अनुराग, राष्ट्र–सेवकों और नेताओं के प्रति स्नेह और श्रद्धा, देश में जागरण का सन्देश एवं राष्ट्र हित के लिए बलि की भावना इनकी राष्ट्रीय कविताओं का मूल स्वर है। चतुर्वेदी जी की रचनाएँ शिल्प की दृष्टि से बड़ी सरल होते हुए भी मार्मिक हैं।
- शिल्पगत लाक्षणिकता के स्थान पर सहज अभिव्यक्ति ही इनके काव्य–सौन्दर्य का मूल आधार है। इनकी भाषा सरल, सीधी और मुहावरेदार है। सरल भाषा व्यवहार के ये प्रबल पक्षधर है। इन्होंने तत्सम शब्दों का प्रयोग बहुत किया है साथ ही तत्सम तद्भव, देशी और विदेशी शब्दों का मेल भी किया है।

  इनकी कविता में तुक और ताल, लय और छंद की झंकार हमेशा बनी रहती है। इनकी रचनाओं में प्रश्नवाचक वाक्यों का प्रयोग अधिक हुआ है। चतुर्वेदी जी की शैली सर्वथा मौलिक और नूतन है।

इन्होंने न केवल राष्ट्रीयता की भावना से युक्त साहित्य लिखा बल्कि स्वयं राष्ट्रीय आन्दोलनों में हिस्सा लिया, कई बार जेल गए। 'मरण त्यौहार', 'कैदी और कोकिला', 'सिपाही', 'सिपाहिनी', 'जलियाँवाला बाग', 'जवानी', 'युग और तुम', 'तिलकः, 'रोने दो लुट गया आज', 'स्व. सप्रेजी की महायात्रा पर', 'राष्ट्रीय झण्डे की भेंट, ''पुष्प की अभिलाषा' –शीर्षक कविताएँ इनके हृदय की देश भक्ति भावना को उजागर करती हैं। वे देश के स्वतंत्रता संग्राम के अनन्य सेनानी, पत्रकारिता के क्षेत्र में राष्ट्र के जागरूक प्रहरी, कविता के क्षेत्र में राष्ट्र के लिए बलिदान हो जाने का महान आदर्श प्रस्तुत करने वाले कवि थे।

अभ्यासः

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए :

(i) इन्होंने क्रांतिकारी नेता .... से दल की दीक्षा ली।

(ii) सन् ...... से .... ई. तक श्री चतुर्वेदी क्रांतिकारी दल के लिए कार्य करते रहे।

(iii) इनकी विद्रोहात्मक लेखनी से घबराकर ब्रिटिश शासन इन्हें सन् .... और .... में राजद्रोह के अभियोग में कारागार भेजता रहा।

(iv) हिन्दी साहित्य–सम्मेलन प्रयाग में .... पर उन्हें .... पुरस्कार दिया।

(v) 'झण्डे की भेंट' शीर्षक कविता .... के .... में प्रकाशित हुई थी।

(vi) .... चतुर्वेदी जी की भावनाओं एवं विचारधाराओं को स्पष्ट करने वाले प्रमुख पत्र के रूप में सामने आता है।

(vii) .... के जेल जाने पर इन्होंने 'प्रताप' का संपादन कानपुर में रहकर किया।

सही उत्तर दीजिए :

(i) माखनलाल चतुर्वेदी की रचनाएँ शिल्प की दृष्टि से सरल/दुरूह हैं।

(ii) माखनलाल चतुर्वेदी की काव्य भाषा सरल और मुहावरेदार है/क्लिष्ट है।

(iii) माखनलाल चतुर्वेदी की रचनाओं में तत्सम पद योजना/तद्भव पद योजना का प्रयोग अधिक हुआ है।

(iv) इनकी कविता में तुक और ताल है/नहीं है।

(v) इनकी कविताओं में लोकधुन भी शामिल है/नहीं है।

7.9 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

1. राष्ट्रीय चेतना की कविता जाति, समाज और प्रान्तीयता की संकीर्ण भावना मिटाती है और जन–जीवन में कर्तव्य की भावना जगाती है।
2. राजा राम मोहन राय के ब्रह्म समाज, स्वामीदयानन्द सरस्वती के आर्य समाज, रामकृष्ण परम हंस के रामकृष्ण मिशन, महाराष्ट्र के महादेव गोबिन्द रानाडे, थियोसोफिकल सोसाइटी, इण्डियन एसोसिएशन और नेशनल कांग्रेस द्वारा सुधारवादी आन्दोलन चलाए गए जिसने स्वतंत्रतापूर्व की राष्ट्रीय चेतना को प्रभावित किया।

बोध प्रश्न –2

1. माखनलाल चतुर्वेदी का जन्म 1 अप्रैल सन् 1889 को होशंगाबाद के 'बाबई' ग्राम में हुआ था।
2. उन्हें संस्कृत, अंग्रेजी, मराठी, गुजराती, बंगाली आदि भाषाओं का ज्ञान था।
3. सैयद अलीमीर, स्वामी रामतीर्थ, प. माधवराज सप्रे तथा माणक चन्द जैन का उनके जीवन पर
   व्यापक प्रभाव पड़ा।

बोध प्रश्न –3

1. माखनलाल चतुर्वेदी ने 'प्रभा', 'कर्मवीर' और 'प्रताप' का संपादन किया।
2. पत्रकारिता के क्षेत्र में ये श्री माधवराज सप्रे, श्री गणेश शंकर विद्यार्थी, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी,
   महात्मा मुंशी राम तथा पंडित विष्णु दत्त शुक्ल के निकट संपर्क में आये।
3. 'कर्मवीर' पत्र उन दिनों राष्ट्रीय जागरण का अग्रदूत था।

बोध प्रश्न–4

1. माखनलाल चतुर्वेदी 'भारतीय आत्मा' के नाम से विख्यात हुए।
2. चतुर्वेदी जी की कविताओं के भाव पक्ष को तीन रूपों में बाँटा जा सकता है–(1) अलौकिक प्रेम या
   रहस्य भावना (2) भगवद् प्रेम या भक्ति भावना (3) स्वदेश प्रेम या राष्ट्रीय भावना।
3. चतुर्वेदी जी की कविताओं में लोक जीवन का प्रभाव लोक धुनों के रूप में पड़ा।

बोध प्रश्न–5

1. 'मरण त्यौहार', 'कैदी और कोकिला', 'सिपाही', 'सिपाहिनी', 'जलियाँवाला बाग', 'जवानी', 'युग और तुम', 'तिलक', 'रोने दो लुट गया आज' स्व. स्प्रे जी की महायात्रा पर तथा 'राष्ट्रीय झण्डे की भेंट' आदि कविताएँ इनकी राष्ट्रीय भावना और कवि व्यक्तित्व की वीरता को उजागर करती हैं।
2. 18 फरवरी 1922 को इन्होंने बिलासपुर जेल में 'पुष्प की अभिलाषा' शीर्षक कविता लिखी थी।

बोध प्रश्न–6

1. कोयल की वाणी को कवि 'रण भेरी' इसलिए कहता है क्योंकि कवि को ऐसा प्रतीत होता है मानो
   यह गुलामी के विरुद्ध संघर्ष करने का आह्वान कर रही है।
2. 'पुष्प की अभिलाषा' के माध्यम से स्वयं कवि की बलिदान भावना व्यक्त हुई है।

पंक्ति का अर्थ :

(i) पराधीन व्यक्ति की यह पीड़ा है कि वह अपनी इच्छा से रो भी नहीं सकता।

(ii) कैदी का संसार जेल की चार–दीवारी के भीतर की अंधेरी कोठरी ही होता है।

अभ्यासों के उत्तर:

(i) इन्होंने क्रांतिकारी नेता देवसकर जी से दल की दीक्षा ली।

(ii) सन् 1906 से 1920 ई. तक श्री चतुर्वेदी निरंतर क्रांतिकारी दल के लिए कार्य करते रहे।

(iii) इनकी विद्रोहात्मक लेखनी से घबराकर ब्रिटिश शासन इन्हें सन् 1921, 1922 और 1927 में राजद्रोह के अभियोग में कारागार भेजता रहा।

(iv) हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने **हिमकिरीटिनी** पर उन्हें **'देव'** पुरस्कार दिया।

(v) 'झंडे की भेंट' शीर्षक कविता **'प्रभा'** के **'झंडा अंक'** में प्रकाशित हुई थी।

(vi) 'कर्मवीर' चतुर्वेदी जी की भावनाओं एवं विचारधाराओं को स्पष्ट करने वाले प्रमुख पत्र के रूप में सामने आता है।

(vii) गणेशशंकर विद्यार्थी के जेल जाने पर इन्होंने 'प्रताप' का संपादन कानपुर में रहकर किया।

सही उत्तर दीजिए :

(i) सरल हैं।

(ii) सरल और मुहावरेदार है।

(iii) तत्सम पद योजना का प्रयोग अधिक हुआ है।

(iv) तुक और ताल हैं।

(v) शामिल है।

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर अपने शब्दों में लिखिये :

1. माखनलाल चतुर्वेदी का जीवन–परिचय अपने शब्दों में लिखिये।

....

....

....

2. माखनलाल चतुर्वेदी की कविताओं में व्यक्त राष्ट्रीय भावना को अपने शब्दों में लिखिये।

....

....

....

3. पत्रकारिता के क्षेत्र में चतुर्वेदी जी के योगदान को अपने शब्दों में लिखिये।

....

....

....

4. 'कैदी और कोकिला' कविता के माध्यम से कवि क्या कहना चाहता है?

....

....

....

5. 'पुष्प की अभिलाषा' में व्यक्त बलिदान भावना का मर्म उद्घाटित कीजिए।

....

....

....

7.10 उपयोगी पुस्तकें

1) माखनलाल चतुर्वेदीः व्यक्तित्व और कृतित्व – संपादक प्रेमनारायण टंडन
2) हिन्दी अनुशीलन (माखनलाल चतुर्वेदी विशेषांक) – भारतीय हिन्दी, इलाहाबाद
3) माखनलाल चतुर्वेदीः यात्रा पुरुष–संपादक, श्रीकान्त जोशी

इकाई 8 : अज्ञेय

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 कवि परिचय
    8.2.1 जीवन परिचय
    8.2.2 रचनाकार–व्यक्तित्व
    8.2.3 रचनाएँ
8.3 काव्य संवेदना
    8.3.1 काव्य–यात्रा का विकास
    8.3.2 काव्य संवेदना की गहराई
    8.3.3 आस्था और अनुभूति का संस्कारी प्रभाव
    8.3.4 नव्य रहस्यवाद
    8.3.5 प्रयोग, प्रगति और परम्परा
    8.3.6 आधुनिकता और समसामयिकता
    8.3.7 मानव–मूल्यों के संदर्भ में व्यक्तित्व की खोज
    8.3.8 प्रकृति की लय का उल्लास
    8.3.9 जीवन–दर्शन
8.4 अभिव्यंजना–शिल्प का सौन्दर्य
    8.4.1 काव्य–भाषा की सर्जनात्मकता
    8.4.2 बिंब विधान
    8.4.3 प्रतीक–विधान
    8.4.4 उपमान योजना
    8.4.5 छंद एवं लय
8.5 सारांश
8.6 शब्दावली
8.7 बोध प्रश्नों /अभ्यासों के उत्तर
8.8 उपयोगी पुस्तकें

8.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- अज्ञेय के सृजन सघर्ष की मनोभूमि तथा युग–परिवेश से परिचित हो सकेंगी/सकेंगे,
- जीवन परिचय, रचनाकार व्यक्तित्व तथा रचनाओं के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगी/सकेंगे,

- काव्य–यात्रा के तनावों, द्वंद्वों, उतार–चढ़ावों की आन्तरिक मानसिकता का परिचय प्राप्त कर सकेंगी/सकेंगे,
- कवि की मूल–संवेदना, परम्परा, प्रगति, प्रयोग,सांस्कृतिक–बोध, सौन्दर्य–बोध की अवधारणा, मानव–प्रकृति से प्राप्त राग–संस्कार तथा काव्य–प्रवृत्तियों से साक्षात्कार कर सकेंगी/सकेंगे,
- काव्य रूप, काव्य–भाषा, बिंब, प्रतीक, उपमान, लय–छंद आदि के शिल्पगत प्रयोगों को गहराई से समझ सकेंगी/सकेंगे,
- अज्ञेय की काव्यानुभूति की बनावट तथा नई कविता, अन्य कवियों की काव्यानुभूति की बनावट से पार्थक्य के कारणों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगी/सकेंगे,
- कवि अज्ञेय का समग्रता में विचार–विश्लेषण, आस्वाद और मूल्यांकन कर सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

छायावादोत्तर काव्य की सर्जनात्मक सम्भावनाओं को उजागर करने की दृष्टि से अज्ञेय एक ऐसा दुर्निवार ऐतिहासिक व्यक्तित्व है, जिसने नवीन काव्य आंदोलनों तथा प्रवृत्तियों का पूरे आत्मविश्वास से प्रवर्तन किया है। उन्होंने छायावाद के भावावेगप्रधान काव्य मुहावरे को छोड़ते हुए रोमांटिक भाव–बोध से विद्रोह किया है। फलतः अज्ञेय का काव्य–सृजन पूरे संघर्ष के साथ गैर–रोमांटिक कविता की सम्भावनाओं को स्पष्टता से प्रकाश में लाता है। भारतेन्दु और निराला के बाद काव्य–प्रयोगों के क्षेत्र में वे सर्वाधिक सक्रिय रहे हैं। अज्ञेय ने निराला की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए भावना के साथ विचार को कलात्मक सर्जनात्मकता के स्तर पर प्रतिष्ठित किया। उनके सृजन की प्रयोगधर्मी पृष्ठभूमि में परम्परा की लीकों, रूढ़ियों और प्राचीन जीर्ण मनोवृत्तियों के प्रति खुली ललकार है। प्रयोग के स्तर पर वे नई राहों के अन्वेषीहै और नई काव्य–संवेदना के प्रवक्ता भाष्यकार और चिंतक सिद्धान्तकार। उन्होंने पूरी निष्ठा से प्रयोगवाद, नयी–कविता के आन्दोलन ही नहीं चलाए हैं, बल्कि इस कविता को समझने–समझाने का नया काव्य–शास्त्र भी निर्मित किया। देश–विदेश की कविता को छानकर हिंदी की नयी कविता परम्परा के सांस्कृतिक संवेदन से ऐसी कविता का सृजन किया है जो टी.एस. इलियट एवं उनके साथियों का काव्यानुवाद नहीं है, बल्कि उसमें भारतीय परिवेश की गहरी पुकार है। अपनी अनेक क्रान्तिकारी स्थापनाओं के कारण वे सर्वाधिक चर्चित पर अधिकाधिक विवादों के केन्द्र में रहे हैं। शायद ही किसी नए कवि ने इतने प्रहार झेलें हों, जितने अज्ञेय को झेलने पड़े हैं।

8.2 कवि परिचय

8.2.1 जीवन परिचय

अज्ञेय का पूरा नाम है –सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय। श्री हीरानंद वात्स्यायन उनके पिता का नाम है। इस रचनाकार को जेल यात्राओं के दौरान गुप्त नाम से लिखने के लिए 'अज्ञेय' नाम जैनेन्द्र कुमार का दिया हुआ है, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। जीवन भर वे 'अज्ञेय' नाम से ही सृजन–कार्य में प्रवृत्त रहे। पिता पुरातत्व विभाग में खुदाई–शिविरों के अधिकारी थे। अज्ञेय का जन्म कसया (जिला देवरिया) के एक खुदाई शिविर में 7 मार्च 1911 को हुआ। कसया (कुशी नगर) का संबंध गौतम बुद्ध के निर्वाण स्थान से जोड़ा जाता है। अज्ञेय ने

बौद्ध धर्म की दीक्षा तो न ली पर बुद्ध ने अज्ञेय को भीतर से प्रभावित किया। वे जीवन–भर एक जगह टिककर न रहे। यायावर बने रहे और आत्मान्वेषण, जिज्ञासा तथा आत्म–दान के प्रति खुले मन से झुके रहे। माँ से अधिक पिता के व्यक्तित्व का प्रभाव ग्रहण किया। बचपन से ही अन्तर्मुखी और सच बोलने के कारण उनका घरेलू नाम 'सच्चा' भी रहा।

उन्हें घर पर पुराने ढंग से शिक्षा–दीक्षा दी गई। उन्होंने स्वयं कहा है – 'एक तो मेरी शिक्षा–दीक्षा भी पुराने ढंग से आरम्भ हुई थी जिसमें पटिया और लेखनी का काम भी होता था – लेकिन पुस्तकों का विशेष प्रयोग नहीं होता था। पुस्तक का काम स्मृति ही देती थी। यों घर में पुस्तकें बहुत थीं, लेकिन उन किशोर वर्षों में मेरा काम श्रुति परंपरा से ही चल जाता था, पिता जी भी जब घर पर होते थे तो अक्सर संस्कृत श्लोकों का स्वरपाठ करते थे और उनकी अनुपस्थिति में बड़ी बहिन प्रायः हिंदी के काव्य–ग्रंथ या तो सस्वर पढा करतीं या हम भाइयों को बिठाकर सुनाया करतीं।' स्मृति लेखा, (पृ. 24)। अज्ञेय ने गायत्री मंत्र, अष्टाध्यायी, कालिदास के सृजन के साथ–साथ अंग्रेजी की मौखिक शिक्षा ली। 'और अक्षर–ज्ञान से पहले ही मैं दो–ढाई सौ अंग्रेजी शब्द सीखकर वह भाषा वैसे बोलने लगा था जिसे फर्र–फर्र अंग्रेजी कहते हैं। अंग्रेजी में ही कुछ हल्की कविताएँ और तुगबन्दियाँ रट ली थीं।' बचपन में टेनीसन पढ़ा और भारत के स्वाधीनता आंदोलन के प्रभाव में आए। अज्ञेय एकान्तप्रिय, प्रकृति प्रेमी और जिज्ञासु रहे। हिंदी उन्होंने काफी बाद में सीखी और इस क्षेत्र में वे मैथिलीशरण गुप्त को अपना काव्य–गुरु घोषित तौर पर मानते हैं। गुप्त जी के साथ श्रीधर पाठक, हरिऔध, मुकुटधर पाण्डेय, रामनरेश त्रिपाठी की कविताओं को मनोयोगपूर्वक पढ़ा। तुकों–लयों का अभ्यास किया। रवीन्द्रनाथ और जयशंकर प्रसाद, सरोजिनी नायडू और निराला में लम्बे समय तक मन को रमाये रहे।

अज्ञेय का बचपन श्रीनगर, नालंदा, पटना, लाहौर, लखनऊ, बड़ौदा, मद्रास, उटकमंड आदि कई स्थानों पर बीता। उनकी शिक्षा एक स्थान पर न हुई। श्रीनगर, जम्मू में अंग्रेजी शिक्षा तथा नालंदा–पटना में राखाल दास के संपर्क में आकर बंगला पढ़ी। सन् 1925 में हाई स्कूल पंजाब से, इण्टर (साइंस) 1927 में मद्रास से, बी.एस.सी. 1929 में फोरमन कॉलेज लाहौर से उत्तीर्ण की। एम.ए. अंग्रेजी में दाखिला लिया ही था कि क्रांतिकारियों के सम्पर्क में आ जाने के कारण पढ़ाई न चल सकी। पर अज्ञेय प्राचीन नवीन भारतीय साहित्य तथा पश्चिमी साहित्य को डटकर पढ़ते रहे। अनेक बार यूरोप की यात्राएँ कीं। फ्रांस के कैथोलिक पादरी पियेर दानियेलू के सहयोग से मसीही साधना की गहराई में प्रवेश किया। इसी बीच उन्होंने पहली पत्नी को छोड़कर कपिला वात्स्यायन से विवाह किया। कपिला जी के व्यक्तित्व ने अज्ञेय जी को ललित कलाओं का गहरा संस्कार दिया। वे एक संस्कारी रचनाकार के रूप में उभरे और उनमें विश्व दृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ।

8.2.2 रचनाकार–व्यक्तित्व

अज्ञेय का रचनाकार–व्यक्तित्व छायावादोत्तर काल में 'आधुनिक भाव बोध' के प्रवर्तक के रूप में प्रतिष्ठित हआ। वे नए काव्य आंदोलनों, प्रवृत्तियों के सूत्रधार कवि, मौलिक निबंधकार, उपन्यासकार, कहानीकार, सम्पादक, हिंदी में नवीन आलोचनाशास्त्र के निर्माता, तुलनात्मक साहित्य के प्रतिष्ठापक, काव्य–संकलनों, पत्र–पत्रिकाओं के यशस्वी सम्पादक और सांस्कृतिक मनीषी एक साथ रहे हैं। नए सृजन की लगभग सभी नवीन विधाओं पर उनके विचारों के रंग और रूप की अमिट छाप है। वे बुद्ध और जैन–दर्शन, वैष्णव चिंतन परम्परा, मानवेन्द्र राय के

रेडिकल ह्यूमेनिज्म, परम्परा विरोधी, क्रांतिकारी के रूप में भी चर्चित रहे हैं। नवीन हिंदी साहित्य में छायावाद और प्रगतिवाद से अलग हटकर नए सृजन को दिशा–दृष्टि देने के प्रयास के लिए उनका नाम सदैव स्मरण किया जाएगा। अपने रचनाकार व्यक्तित्व की शक्ति से उन्होंने हिंदी काव्य की 'नवीन कविता को पुनः संभव' बनाया। अज्ञेय साम्यवादी विचारधारा से सहमत नहीं रहे, उन्होंने भारतीय चिंतन के लोकतन्त्रवादी मूल्यों का समर्थन किया। कहना न होगा कि अज्ञेय उन विरल रचनाकारों में से हैं जिनका व्यक्तित्व कला–सौन्दर्य के नवीन निर्माता और नयी राहों के अन्वेषी दोनों ही प्रतिमानों पर खरा उतरा है। वे एक ओर चिंतनशील अंतर्दृष्टि के रचनाकार हैं, दूसरी ओर दृष्टि सम्पन्न आलोचक। 'तार सप्तक' (1943 ई.), 'दूसरा सप्तक' (1951 ई.), 'तीसरा सप्तक' (1959 ई.), 'चौथा सप्तक' (1969 ई.) की योजना, 'प्रतीक' पत्रिका का सम्पादन तथा 'दिनमान' साप्ताहिक पत्रिका का सम्पादन, प्रकाशन, प्रसारण, गोष्ठी आयोजन आदि सभी कोणों से अज्ञेय की दृष्टि नए–बोध के विकास को दिशा का ऐतिहासिक महत्व है। साहित्य के इतिहास के विद्यार्थी के लिए यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि अज्ञेय के प्रखर और चिंतनशील, प्रयोगशील और संस्कारी, विद्रोही व्यक्तित्व ने नवीन सर्जनात्मकता को आच्छादित नहीं किया – बल्कि उसके विकसित होने में पूरा योगदान दिया है।

उन्होंने अपने छात्र जीवन से ही भारतीय स्वाधीनता–संग्राम में मानव–मुक्ति के लिए सक्रिय हिस्सेदारी की। सन् 1927 में भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद के साथ सशस्त्र क्रांति का आह्वान किया। वे 'हिंदुस्तानी समाजवादी प्रजातंत्र सेना' के सदस्य बने। अंग्रेजी साम्राज्यवाद को खदेड़ने के लिए उन्होंने लाहौर से दिल्ली तक बम ढोए। बम बनाने वाली फैक्ट्री के अज्ञेय वैज्ञानिक सलाहकार रहे और 1930 ई. में गिरफ्तार हुए। कई वर्षों तक जेल की यातना भरी जिंदगी व्यतीत की। 'चिंता', 'शेखर एक जीवनी', 'कोठी की बात' जैसी कृतियों की रचना जेल में ही की। 'दुःख सभी को माँजता है'– यह आत्म–ज्ञान का दर्शन उन्होंने अनुभव से प्राप्त किया। जेल से छूटकर किसान आंदोलनों में काम किया, देश–विदेश की खाक छानी तथा 'सैनिक', 'विशाल भारत' जैसे पत्रों के सम्पादन विभागों में नौकरी की। भारतके कला तीर्थों की बार–बार यात्राएँ कीं। 1955 में पश्चिमी यूरोप की यात्रा की तथा कवियों, चित्रकारों, दार्शनिकों के व्यक्तिगत सम्पर्क में आए। जापान–फिलीपीन की यात्रा पर निकले। फ्रांस गए तथा दार्शनिक पियेर से मठ में दीक्षा ली। 1961 में केलिफोर्निया में भारतीय साहित्य संस्कृति पढ़ाने के लिए नियुक्त हुए। अमेरिका घूमे, आस्ट्रेलिया के सेमिनारों में भाग लिया। कुछ समय जोधपुर विश्वविद्यालय में भारतीय भाषा–विभाग के निदेशक रहे फिर आकाशवाणी में रहे। 'दिनमान' 'नवभारत टाइम्स' के सम्पादक रहे और सब छोड़कर साहित्य सेवा को समर्पित हो गए। छायावादी भावावेग और आसक्ति उनके व्यक्तित्व का गुण कभी नहीं रहा, न जीवन में, न रचना में।

8.2.3 रचनाएँ

अज्ञेय की रचनाओं का छायावाद युग से ही आरम्भ हो जाता है। उनकी प्रकाशित रचनाओं का क्रम इस प्रकार है – काव्य संकलन – भग्नदूत (1933), चिंता (1942), इत्यलम् (1946), हरी घास पर क्षण भर (1949), बावरा अहेरी (1954), इन्द्र धनुष रौंदे हुए ये (1957), अरी ओ करुणा प्रभामय (1959), आँगन के पार–द्वार (1961), सुनहले शैवाल (1965), प्रिजन डेज एण्ड अदर पोयम्स (अंग्रेजी में 1946), कितनी नावों में कितनी बार (1966), क्योंकि मैं उसे जानता हूँ (1968), सागर मुद्रा (1969), पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ (1973), ऐसा कहीं कोई घर 'आपने देखा है'? आदि। अज्ञेय की सम्पूर्ण कविताओं का संकलन दो खंडों में 'सदानीरा' नाम से प्रकाशित है।

सम्पादित ग्रंथ– तार सप्तक (1943 ई.), दूसरा सप्तक (1951 ई.), तीसरा सप्तक (1959), चौथा सप्तक (1969), पुष्करिणी भाग–2, रूपाम्बरा (1960), आज का भारतीय साहित्य, नए एकांकी (1952), नेहरू अभिनंदन ग्रंथ संयुक्त रूप से (1949), हिंदी की प्रतिनिधि कहानियाँ (1952)।

अनूदित – श्रीकान्त – (शरतचन्द्र, अंग्रेजी में 1944), द रेजिग्नेशन (जैनेन्द्र कुमार के उपन्यास 'त्यागपत्र' का अंग्रेजी में – 1946), नीलाम्बरा (अंग्रेजी में)।

भ्रमण वृतान्त – अरे यायावर रहेगा याद (1953), एक बूंद सहसा उछली (1961), जन–जनक–जानकी (सम्पादित)।

कहानियाँ – विपथगा (1937), परम्परा (1944), कोठरी की बात (1945), शरणार्थी (1948), जयदोल (1951), ये तेरे प्रतिरूप (1961)।

उपन्यास–शेखर एक जीवनी भाग–1 (1941), भाग–2 (1944), नदी के द्वीप (1952), अपने–अपने अजनबी (1961), बारह खम्भा (सम्पादित)।

निबन्ध संग्रह – त्रिशंकु, आत्मनेपद, हिंदी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य, सबरंग और कुछ राग, भवन्ती, अन्तरा, लिखि कागद कोरे, जोग लिखी, आलवाल अद्यतन, संवत्सर, कहां है द्वारका, आत्मपरक, सर्जना और संदर्भ आदि ।

बोध प्रश्न– 1

1. अज्ञेय के जीवन–परिचय की चार महत्वपूर्ण विशेषताओं को लिखिए।
   ....
   ....

2. रचनाकार अज्ञेय पर किन तीन प्रमुख रचनाकारों का प्रभाव है?
   ....
   ....
   ....

3. अज्ञेय द्वारा सम्पादित तीन संग्रहों के नाम लिखिए।
   ....
   ....
   ....

4. सही (√) गलत (x)का निशान लगाकार बताइए कि अज्ञेय :
   क) छायावादी कवि ( )
   ख) प्रगतिवादी कवि ( )
   ग) प्रयोगवादी कवि ( )
   घ) नयी कविता के कवि ( )

5. अज्ञेय और 'तार सप्तक' के संबंध का निरूपण तीन पंक्तियों में कीजिए।

....

....

....

6. अज्ञेय का पूरा नाम लिखिए।

....

....

....

8.3 काव्य संवेदना

8.3.1 काव्य–यात्रा का विकास

अज्ञेय की सर्जनात्मक–प्रतिभा का उन्मेश भारतीय स्वाधीनता आंदोलन की साम्राज्यवाद–विरोधी चेतना को लेकर होता है। उनके काव्य में 'मानव मुक्ति' तथा 'आत्मदान' की आकांक्षा का स्वर सर्वत्र सुनाई देता है। उनके ऊपर भारतेन्दु, मैथिलीशरण गुप्त, श्रीधर पाठक, मुकुटधर पाण्डेय, हरिऔध, प्रसाद और निराला के काव्य–प्रभाव का गहरा असर है। खड़ी बोली के देशी–संस्कारों की शक्ति को ग्रहण करने और पचाने में उनके काव्य गुरु मैथिलीशरण गुप्त रहे हैं। प्रसाद के सांस्कृतिक–बोध की सम्पन्नता, निराला की ओजस्वी गतिशील संवेदना और काव्यप्रयोग शक्ति के के प्रति उनमें गहरा आकर्षण है। अपनी बौद्धिक जागरूकता तथा विवेक–संयत दृष्टि के कारण वे छायावादी भावावेग को कभी भी स्वीकार नहीं कर सके। उन पर पश्चिम का असर है – विशेषकर टी.एस. एलियट तथा डी.एच. लारेन्स का। पर पश्चिमी विचार के प्रति व्यवहार उनका अपना है। वे 'साधारण' से ज्यादा 'सहज' में विश्वास करते हैं। 'भग्नदूत', 1933 – ई. में किशोर मन पर पड़े आघात की अभिव्यक्ति है। उन्हें विश्वास है 'यदि वीणा टूट भी गई तो उसके प्राण झनक उठेंगे।' यहाँ घनीभूत इच्छाओं के अंगारे दहक रहे हैं। पर अभिव्यक्ति पर छायावाद का हल्का रंग है। 'चिंता' में 'विश्वप्रिया' और 'एकायन' दो खण्डों में नर–नारी के बीच आकर्षण–संघर्ष का द्वंद्व है। 'चिंता' पर डी.एच. लारेन्स के विचारों की धमक है जिसमें प्रेम को परिभाषित करने की कोशिश की गई है किन्तु छायावादी प्रणय–संस्कार भी यहाँ चुप–चुप झिलमिला रहे हैं।

'तार सप्तक' (1943 ई.) अज्ञेय की कवि–कीर्ति का ऐतिहासिक प्रतीक है। इस सम्पादन को आधुनिक भाव–बोध का नया दस्तावेज माना जाता है और प्रयोगवाद का आधार स्तम्भ। इस सम्पादन में प्रकाशित उनकी कविताएँ 'इत्यलम' में मौजूद हैं। अज्ञेय कविता को ही कवि का चरम वक्तव्य मानते हैं और काव्य–विषय, काव्य संवेदना, कवि के दायित्व, प्रयोग, परम्परा जैसी समस्याओं को यहाँ नए ढंग से उठाते हैं। 'योजना विश्वासी' अज्ञेय का स्वर है 'संग्रहीत सभी कवि ऐसे होंगे जो कविता को प्रयोग का विषय मानते हैं जो यह दावा नहीं करते कि काव्य का सत्य उन्होंने पा लिया है।' 'तार सप्तक' में 'राही नहीं, राहों के अन्वेषी' सात कवि हैं जो नयी

काव्य–प्रवृत्तियों का भरपूर संकेत देते हैं। सभी महत्वपूर्ण विषयों पर इन कवियों की राय अलग–अलग है। किन्तु अन्वेषी का दृष्टिकोण इन सभी को एक अंतःसूत्र में बाँधता है।

'इत्यलम' में 'भग्नदूत'की चुनिन्दा कविताओं के अतिरिक्त चार भागों में 'बंदी स्वप्न', 'हियहारिल', 'वंदना के दुर्ग', 'मिट्टी की ईहा' शीर्षक से फुटकर कविताएं हैं। प्रथमवार 'हियहारिल' में कवि के नव्य रहस्यवाद का परिचय मिलता है। प्रेम और मौन जो उनकी परवर्ती कविताओं में विस्तार पाते हैं उनके बीज भाव भी यहाँ मौजूद हैं। यौन कुंठाओं की पुकार है पर मिट्टी से 'कलगी बाजरे की' तथा 'नदी के द्वीप' जैसी चर्चित कविताएँ इसी संग्रह में हैं। 'हरी घास' मुक्ति का प्रतीक है और प्रकृति के साथ मानव के हरे भरे जीवंत रिश्ते का रंग। 'बावरा अहेरी' का अर्थ है – सूर्य। कवि उससे कालिमा धोने की प्रार्थना करता है। यह कवि की सन्त भावभूमि है और अदम्य उत्साह का विस्फोट। यहाँ यौन–कुंठाओं का स्थान आत्मान्वेषण ने ले लिया है। प्रेमानूभूति, प्रकृति, दर्शन तथा व्यंग्य कला का ताजा सौन्दर्य इस संग्रह की कविताओं की विशेषता है। 'आज तुम शब्द न दो', 'देह वल्ली', 'वहाँ रात', 'बावरा अहेरी' जैसी बहुचर्चित कविताएँ यहाँ मौजूद हैं। 'यह दीप अकेला' तथा 'काँगड़े की छोरियाँ' जैसे लोक गीत, नयी शैली और नयी भाव भूमि की आन्तरिक लय का लोक–उल्लास हैं।

'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये' की कविताओं में 'इतिहास चेतना' की ध्वनि है। कवि अखण्ड आस्था की मशाल जलाकर सामाजिक अनुभूति में नया सृजनात्मक अर्थ जोड़ता है। 'अरी ओ करुणा प्रभामय' की कविताएँ चार खण्डों में विभाजित हैं – 'रोपयित्रि', 'रूपकेकी', 'एक चीड़ का खाका' और 'द्वार हीन द्वार'। रोपयित्री खण्ड में आत्मानभाव के काव्य–द्वीप हैं – नए कवि का आत्मस्वीकार है जो हर भाव सत्य को नए सन्दर्भ से जोड़ देता है। कवि अपने को खुले तौर पर 'आधुनिक' घोषित कर देता है –

यों मैं कवि हूँ, आधुनिक हूँ नया हूँ,
काव्य तत्व की खोज में कहाँ नहीं गया हूँ?

यहाँ कवि 'ठाठ फकीरी' को अच्छा समझता है – किन्तु उसे 'साँचे ढला' समाज नहीं चाहिए। देश की विडम्बना के चित्र 'देश तो हरा भरा है पर खलिहान खाली है।' जैसी कविताएँ हैं। 'रूपकेकी' खंड प्रकृति–सौन्दर्य का प्रकृतरूप है। 'एक चीड़ का खाका' में जापानी कविताओं के अनुवाद हैं। 'द्वारहीन द्वार' खण्ड में रहस्यवाद की गूंज है। अब कवि में सागर, मछली और आत्मान्वेषण का विस्तार हो गया है।

'आँगन के पार द्वार' में भाव–परिष्कार से प्राप्त सौन्दर्यानुभूति की कविताएँ हैं। इसी संग्रह पर 1964 ई. में साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला है। 'बना दे चितेरे', 'मेरे भीतर दाता जागा' जैसी कविताओं में आत्मदान और आत्मउन्मोचन के भाव हैं। 'चक्रांत शिला' खंड की कविताओं में बौद्ध–साधना का तत्त्व–दर्शन है। इन कविताओं में शून्य और मौन एकाकार हैं पर रहस्य–योगी काकचोंच जाग गया है। इस काव्य की सबसे प्रसिद्ध रचना 'असाध्य वीणा' है जो स्वयं कवि की सृजन प्रक्रिया और सृजन कर्म का साधना का प्रतीक है। मूलकथा भारतीय बौद्ध कथा मिश्रित जापानी कथा है। सच बात है कि नयी कविता की असाध्य वीणा, अज्ञेय जैसे साधक के हाथों ही बजी। इस – कविता को मसीही दर्शन की उतरन कहना भूल है। क्योंकि यह काव्य सृजन की भारतीय 'समाधि' का साकार बिंब है। इसमें आध्यात्मिकता खोजना दिमागी सनक ही कहलायेगी।

कारण सृजन–प्रक्रिया की यह वास्तविकता का अनुभव क्षेत्र है। 'कितनी नावों में कितनी' की कविताएँ कवि में बढ़ती हुई अन्तर्मुखता को व्यंजित करती हैं। 'क्योंकि मैं उसे जानता हूँ' की कविताओं में काल मुक्त क्षणों का तत्त्व दर्शन अधिक है। पर सामाजिक चेतना का विकास–परिष्कार 'क्योंकि मैं उसे जानता हूँ' जैसी कविताओं में जारी है। देश के सिर पर रखा अलगाववाद, जातिवाद, नस्लवाद, साम्प्रदायिकतावाद का कोल्हू कवि को बेचैन किए है।

'सागरमुद्रा' कवि संवेदना की प्रौढ़ता का प्रतीक है। अनेक कविताएं 'काल' की अवधारणा को विषयवस्तु बनाकर रची गई हैं। सागर व्यापकता तथा गहराई का प्रतीक है। सागर कवि को घेरता है, भाता है, मुक्त करता है। 'पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ' की कविताओं में वन झरने की धार है, खुले में खड़ा पेड़ है, नंदा देवी है। कुमाऊंनी की प्रकृति सुंदरी अज्ञेय के काव्य की प्रेरणा रही है। इसी प्रेरणा की उदात्त भाव भूमि 'महावृक्ष के नीचे' काव्य–संग्रह की कविताओं में है जहाँ कवि वृक्षों से जीवन का राग सुनता है। कला–साधना में लोक–जीवन, लोक संवेदना और लोक–भाषा की लय घुल जाती है। अब अज्ञेय एक फकत आदमी हैं, पाण्डित्य के भार से मुक्त भारतीय सर्जक। कविता अब सामाजिक परिवर्तन का अस्त्र है जिसका काम कुछ कहना नहीं, कुछ करना है। कवि अपनी मिट्टी की जड़ों से जुड़ता है और महावृक्ष अब बोधिवृक्ष साबित हुआ है। यहाँ काव्य–संवेदना को चीरती जिन्दगी की ललकार उठ रही है। ऐसा कहीं कोई घर आपने देखा है जिसमें परायापन न हो सब मानव मुक्त हों, यहाँ समानता, समता की भावभूमि पर अज्ञेय का काव्य–विस्तार पाया जाता है।

सारांश यह है कि अज्ञेय की काव्य–यात्रा में ठहराव नहीं है। कला, भाव, रूप और चिंतन का लगातार विकास परिष्कार हुआ है। कवि ने एक ऐसी विश्वदृष्टि पा ली है जो उसे सागर का दर्शन देती है। एक संदेश इस काव्य–यात्रा में (कमाया हुआ सत्य) गूंज रहा है –

> बढ़े चाहे बोध जितना
> शास्त्र का, इतिहास का,
> रूढ़ि के विन्यास का या सूक्ति का
> कम नहीं ललकार होती जिंदगी की
> मोड़ आगे और भी हैं –

'नदी की बाँक पर छाया' की कविताओं में जीवन का आलोक है, परम्परा का प्रवाह है। कहना न होगा कि परम्परा की आधुनिकता के लिए अज्ञेय की काव्य यात्रा का ऐतिहासिक मूल्य है।

8.3.2 काव्य संवेदना की गहराई

अज्ञेय की काव्य संवेदना के स्वरूप विवेचन से पहले यह जरूरी है कि थोड़ा–सा 'संवेदना' शब्द पर सामान्य रूप से 'संवेदना' शब्द को अंग्रेजी के शब्द 'सेन्सीबिलिटी' (ईमानदारी) के पर्याय के रूप में यह जाता है। किन्तु संवेदना को मात्र सेन्सीबिलिटी का पर्याय इसलिए नहीं माना जा सकता। क्योंकि इस संवेदना शब्द में अनुभूति की ईमानदारी तथा अनुभव की प्रमाणिकता भी समाहित है। इस प्रकार एक सीमा तक बौद्धिक चेतना भी संवेदना के भीतर आ जाती है। कवि अज्ञेय 'संवेदना' के शब्दार्थ को स्वयं स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि संवेदना वह यंत्र है जिसके सहारे जीवन दृष्टि अपने से इतर सब कुछ के साथ संबंध जोड़ती है – वह संबंध एक साथ ही एकता का भी और भिन्नता का भी **(हिंदी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य, पृ. 17)**। इस कथन

का अर्थ है कि पर भौतिक और आंतरिक जीवन–जगत के अनुभव सक्रिय रहते हैं। जिसमें युग–विशेष की मानसिकता और सौन्दर्य दृष्टियाँ निहित रहती हैं। इसी प्रक्रिया के कारण मूल राग (क्रोध, भय, घृणा) वही रहने पर भी रागात्मक संबंधों की प्रणालियाँ बदलती रहती हैं।

अज्ञेय द्वारा लिखी गई प्रयोग–प्रगतिमूलक नयी कविता की मूल संवेदना भूमि को समझने में उनके कुछ कथन हमारी सहायता करते हैं।
1) 'अभिधेयार्थ युक्त शब्द तो वह कथा का माल है जिससे वह रचना करता है ऐसी रचना जिसके द्वारा वह अपना नया अर्थ उसमें भर सके, उसमें जीवन डाल सके। वही वह प्रतिपत्ति है जिसके लिए कवि 'वागर्थाविवसम्पृक्त' पार्वती परमेश्वर की वन्दना करता है।'

2) 'जब चमत्कारिक अर्थ मर जाता है और अभिधेय बन जाता है तब उस शब्द की रागोत्तेजक शक्ति भी क्षीण हो जाती है, उस अर्थ से रागात्मक संबंध नहीं स्थापित होता। कवि तब उस अर्थ की प्रतिपत्ति करता है, जिससे पुनःराग का संचार हो, पुनः रागात्मक संबंध स्थापित हो। साधारणीकरण का अर्थ यही है।'

3) 'क्या है जो कविता को आवृत्ति नहीं, सृष्टि का गौरव दे सकता है? कवि नए तथ्यों को उनके साथ नए रागात्मक संबंध जोड़ कर नए सत्यों का रूप दे, उन नए सत्यों को प्रेष्य बनाकर उनका साधारणीकरण करे, यही नयी रचना है। इसे नयी कविता को कवि नहीं भूलता।'

4) 'साधारणीकरण का आग्रह भी उसका कम नहीं है, बल्कि यह देखकर कि आज साधारणीकरण अधिक कठिन है, वह अपने कर्तव्य के प्रति अधिक सजग है और उसकी पूर्ति के लिए अधिक बड़ा जोखिम उठाने को तैयार हैं। किसी हद तक ठीक है कि जहाँ कवि की संवेदनाएँ अधिक उलझी हुई हैं वहाँ ग्राहक या सहृदय में भी उन्हीं परिस्थितियों के कारण वैसा ही परिवर्तन हुआ है' (दूसरा सप्तक भूमिका पृ. 12)। जाहिर है कि जटिल होते हुए जीवन–जगत के कारण कविकर्म कठिन और जटिल हो गया है। आज की नयी कविता में जटिल संवेदनाओं को कवि अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है। इसी अर्थ में अज्ञेय की कविता नयी भाव सम्पदा विचार सम्पदा और मनःस्थिति का विस्फोट है या प्रतिबिंब है। उदाहरण के लिए शहर की विषैली स्थिति के प्रति अज्ञेय की संवेदना अधिक तीखी होती गई है। यह कविता महानगर के नरक पर तीखा व्यंग्य है –

साँप!
तुम सभ्य तो हुए नहीं –
नगर में बसना –
भी तुम्हें नहीं आया।
एक बात पूछूँ – उत्तर दोगे?
तब कैसे सीखा डसना
विष कहाँ पाया?

अज्ञेय के इस कथन में न छायावादी 'भावावेग' है न प्रगतिवादी 'आवेश'– बहुत ठंडे मिजाज में आधुनिक भाव–बोध का प्रकाश है।

अज्ञेय की काव्य संवेदना को जीवन के बृहत्तर अर्थ की तलाश है। वह मानवीय संवेदना को सहज और संस्कारी कवि दृष्टि से पकड़ते हैं। व्यक्तिवाद के जाल को तोड़कर वे कहते हैं –

यह दीप अकेला स्नेह भरा
है गर्व भरा मदमाता पर
इसको भी पंक्ति को दे दो
यह जन है : गाता गीत जिन्हें फिर और कौन गाएगा?
पनडुब्बा : ये मोती सच्चे फिर कौन कृती लाएगा?
यह समिधा : ऐसी आग हठीला बिरला सुलगाएगा।
यह अद्वितीय : यह मेरा : यह मैं स्वयं विजर्सित ।

(बावरा अहेरी)

अज्ञेय में अनुभूति की अद्वितीयता का अर्थ सामाजिक अनुभूति से विरक्त होना नहीं है। उन्हें कुंठायुक्त, साँचे ढला, कत्रिम जीवन नापसंद है। 'अच्छे अनुभव की भट्ठी में पके हुए कण दो कण अर्न्तदृष्टि' को उन्होंने आदर दिया है। इसीलिए उनकी काव्यसंवेदना में सहज–अनुभूति का अंश प्रमुख है। उनके भीतर का दाता आत्म–दान और आत्मसमर्पण में ही सुख पाता है –

मेरे भीतर फिर जागा दाता
और मैने फिर नीरव संकल्प किया
लो यह हरी भरी धरती, यह सवत्सा कामधेनु मैंने तुम्हें दी
यह अनुभव अद्वितीय, जो केवल मैंने लिया
सब तुम्हें दिया।

(आंगन के पार द्वार)

अज्ञेय का कवि लगातार दाता की मुद्रा में रहता है। नदी या परम्परा प्रवाह के प्रति उनमें श्रद्धा, समर्पण और माता का भाव है। यथा –

नदी तुम बहती चलो।
भूखण्ड से जो दाय हमको मिला है मिलता रहा है
माँजती–संस्कार देती चलो।

(नदी के दीप)

यह कहना कि अज्ञेय में जन से कटकर रहने का पलायनवादी–व्यक्तिवादी जीवन–दर्शन है– अन्याय है, साथ ही 'नदी के द्वीप' कविता की गलत और भ्रामक व्याख्या है। ध्यान देने की बात यह है कि अज्ञेय जन की व्यथा को काव्य–संवेदना की मूल दृष्टि में रचते हैं –

यह जो मिट्टी गोड़ता है
कोदई खाता है और गेहूँ खिलाता है
उसकी मैं साधना हूँ।
यह जो मिट्टी फोड़ता है
मड़िया में रहता और महलों को बनाता है

उसकी मैं आस्था हूँ।

(मैं वहाँ हूँ)

खूब सोचने–समझने के बाद पुरानी और नयी पीढ़ियों में अज्ञेय सेतु–संवाद कायम करते हैं। उनकी संवेदना की नदी में आत्म–विस्तार और आत्म–उन्मोचन का भाव है वे अपने को दूसरों के लिए पूरा उलीच देना चाहते हैं। सागर उन्हें टेरता है और एक अन्तःसलिला उनमें निसर्गजात प्रवहमान है –

अरे! अन्तः सलिल है रेत
अनगिनत पैरों तले रौंदी हई अविराम
फिर भी घाव अपने आप भरती

(अंतः सलिला)

इसलिए जन की अर्चना में उनका व्यष्टि अभिमान बाधक नहीं हुआ। कवि अज्ञेय को पता है कि संकीर्णता की नाली में कीड़े ही पल सकते हैं। मुक्त जीवन की सक्रिय अभिव्यंजना का तेजोदीप्त प्रवाह ही जीवन की गति है। इसलिए 'स्वरति', 'अंतर्गुहावासी', 'अहंकारी', 'अकेला', 'जीवन–विरोधी' कहना कवि अज्ञेय के अनुभव सत्य से आँख मूँद लेना है।

8.3.3 आस्था और अनूभूति का संस्कारी प्रभाव

अज्ञेय के काव्य पर पश्चिम का प्रभाव है। पर वह पश्चिम की कोरी नकल नहीं है। उसमें भारतीय जीवन का सांस्कृतिक संवेदन और आस्था का स्वर है। एक ऐसी आस्था जिसकी अखण्डता को कोई खंडित नहीं कर सकता। यह कहना कि अज्ञेय मरणधर्मा, निराशावादी–अनास्थावादी–अस्तित्ववाद के भाव–बोध की कविता रचते हैं, एकदम गलत बात है। उन पर बौद्ध दर्शन की छाप है और प्रार्थना भी उस भाव–संस्कार की है –

दुःख सबको माँजता है
स्वयं सबको मुक्ति देना वह न जाने ?
किन्तु जिनको माँजता है
उन्हें वह सीख देता है कि
सबको उससे मुक्त रखें।

सभी को कष्टों से मुक्त रखने की सीख देने वाला रचनाकार अस्तित्ववादी कैसे हो सकता है? कारण –

मुझको दीख गया
हर–आलोक–छुआ अपनापन
है उन्मोचन
नश्वरता के राग से।

(एक बूंद सहसा उछली)

प्रसिद्ध कवि–आलोचक विजयदेव नारायण साही ने 'लघु मानव के बहाने हिंदी कविता पर एक बहस' शीर्षक अपने निबन्ध में अज्ञेय का संबंध जयशंकर प्रसाद की काव्य–परम्परा से जोड़ा है। यह आकस्मिक नहीं है कि हिंदी की नयी कविता के दोनों बड़े कवि अज्ञेय और मुक्तिबोध के मन में प्रसाद के प्रति गहरा आकर्षण है। कारण, प्रसाद का बौद्धिक–सांस्कृतिक चिंतन दोनों को चुनौती भी देता है और प्रेरणा भी। इसीलिए प्रसाद–परम्परा के प्रवाह में अज्ञेय और मुक्तिबोध एक दूसरे के विरोधी न रहकर पूरक बन जाते हैं। जीवन को काँच में से देखने का आग्रह दोनों कवियों में नहीं है, दोनों जीवन–यथार्थ से सीधा साक्षात्कार करते हैं। प्रसाद जी तथा अज्ञेय जी की अनुभूति में मूल अन्तर यह है कि 'कामायनी में जो अनुभूति दर्शन में परिवर्तित हो जाती है उसे अज्ञेय फिर दर्शन से अनुभूति में परिवर्तित करते हैं।' यह क्रिया काफी कठिन है। हल्की अस्तित्ववाद की अनुभूति को वे सहजता से काव्यात्मकता में खपा देते हैं। किन्तु अखंड, अद्वैत, अद्वंद्व वाले रस–सिद्धांत का अज्ञेय समर्थन नहीं करते हैं, क्योंकि आज के मानव की चेतना में द्वंद्व, तनाव और घिराव है और यह कविता तनाव की ऊर्जा पर पल कर ही बढ़ी है।

8.3.4 नव्य रहस्यवाद

अज्ञेय में नव्य रहस्यवादी रुझान की प्रवृत्ति शुरू से ही मिलती है। अपने एक लेख 'चेतना के संस्कार' में वे गांधी विचारदर्शन की भाँति सोचते मिलते हैं। उन्हें लगता है कि भौतिकता–यांत्रिकता के अतिशय विस्तार ने मानव की आन्तरिक और आध्यात्मिक शक्ति का ह्रास किया है। 'मानव विकास सोद्देश्य होना चाहिए और यह सोद्देश्यता परमपिता, ब्रह्म या अनादि चेतना को किसी रूप में माने बिना सिद्ध नहीं होती। विकास सोद्देश्य क्यों है? आधुनिक जीव–विज्ञान के पास इस प्रश्न का उत्तर नहीं है।' किन्तु जो उत्तर विज्ञान के पास नहीं हैं वे उत्तर आत्मा में डूबकर विचार करने वाले चिन्तक के पास है। आज जब 'आत्मा' में हमारा विश्वास नहीं है तब 'आत्मा' का अर्थ है – अन्तश्चेतना। अज्ञेय मानते हैं कि पश्चिम के वैज्ञानिक एक सीमा के बाद रहस्यवाद की बात करने लगते हैं। उन्हें थोथी वैज्ञानिकता से संतोष कहां है?

पहले अज्ञेय जी अरविन्द दर्शन की ओर मुड़े थे। सन् 1939 के 'हंस' अंक में उनकी कविता छपी है, शीर्षक है 'रहस्यवाद'। कविता के आरम्भ में कहा है कि 'मेरा रहस्यवाद ईश्वर की ओर नहीं है।' यह रहस्यवाद सीमित अणु में विराट की शक्ति समा लेना चाहता है। अज्ञेय का भाव–सत्य पर आधारित रहस्यवाद 'सत्य से साक्षात्कार' है। इसीलिए इसे 'नव्य रहस्यवाद' नाम देना सार्थक प्रतीत होता है। मूल बात यह है कि अज्ञेय का नव्य रहस्यवाद, हिंदी के मध्यकालीन सिद्धों–नाथों–संतों के रहस्यवाद से एक दम अलग है।

8.3.5 प्रयोग, प्रगति और परम्परा

अज्ञेय काव्य में नए प्रयोगों के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। हिंदी की आधुनिक कविता में भारतेन्दु, श्रीधर पाठक जयशंकर प्रसाद और निराला के काव्य–प्रयोगों ने प्रगति का एक नया पथ–निर्मित किया है और नवीन काव्य–राहों की खोज की। इसी परम्परा को अज्ञेय विस्तार एवं गहराई देते हैं। प्रयोगों की इसी आन्तरिक निष्ठा के कारण उन्हें 'प्रयोगवादी काव्य–प्रवृत्ति' का प्रवर्तक कवि माना जाता है। प्रयोग, कविता में नयी दिशा की खोज है। अज्ञेय ने कहा है कि–

i) प्रयोग का कोई वाद नहीं है, हम वादी नहीं रहे, नहीं हैं। न प्रयोग अपने आप में इष्ट या साध्य है।

ii) आत्माभिव्यक्ति चाहने वाले कवि को अधिकार है वह उस माध्यम का अपनी आवश्यकता के अनुरूप श्रेष्ठ उपयोग करे, उसी प्रकार आत्म–सत्य के अन्वेषी कवि को, अन्वेषण के प्रयोग रूपी माध्यम का उपयोग करते समय उस माध्यम की विशेषताओं को परखने का भी अधिकार है।

iii) जो लोग प्रयोग की निंदा करने के लिए परम्परा की दुहाई देते हैं, वे यह भूल जाते हैं कि परम्परा कम से कम कवि के लिए कोई पोटली बांधकर अलग रखी हुई चीज नहीं है जिसे वह उठाकर सिर पर लाद ले और चल निकले।

iv) प्रयोग अपने आप में साध्य नहीं है। वह साधन है। वह सत्य को जानने का साधन है जिसे कवि प्रेषित करता है।

v) प्रयोग निरंतर होते आए हैं और प्रयोगों के द्वारा ही कविता या कोई भी कला या कोई भी रचनात्मक कार्य आगेबढ़ सका है।

निष्कर्ष यह है कि नवीन रचनात्मकता के लिए प्रयोगों की अनिवार्यता से इनकार नहीं किया जा सकता।

प्रगति का अर्थ है मानवीय संवेदना का विकास, परिष्कार और विस्तार। मानव की जड़ी–भूत सौन्दर्यभिरुचियों को तोड़कर नवीन सौन्दर्य दृष्टि विकसित करना और नवीन मूल्यों की महत्व प्रतिष्ठा।

'परम्परा' शब्द की नवीन व्याख्या और प्रतिष्ठा अज्ञेय ने हर संभव प्रयत्न से की है। उन्होंने टी. एस. इलियट के निबन्ध 'ट्रेडीशन एंड इंडिविजुल टेलेन्ट' का 'रूढ़ि और मौलिकता' नाम से भावानुवाद करके परम्परा की ओर हिंदी की नयी पीढ़ी का ध्यान आकृष्ट किया है। साथ ही यह भी स्पष्ट किया है कि परम्परा न तो रूढ़ि है न लीक है न परिपाटी है, न मात्र स्मृति है। परम्पंरा कवि को कमानी पड़ती है और इस दृष्टि से परम्परा ही कवि का इतिहास–बोध है। इसी में अतीत की वर्तमानता और वर्तमान की अतीतता विद्यमान रहती है। इस दृष्टि से परम्परा काव्य में प्राचीन नमक का स्वाद है और निरन्तरता का पर्याय। कहना न होगा कि यह निरन्तरता की अनुभूति ही ऐतिहासिक चेतन है और इस चेतना का अनवरत स्पन्दनशील विकास ही परम्परा का ज्ञान है। काल की प्रवाहमानता के इस ज्ञान के बिना कविकर्म चल नहीं सकता। इसी दृष्टि से कवि अज्ञेय परम्परा को आत्मसात करते हैं, संग्रह–त्याग का ज्ञान अर्जित करते हैं और कहते हैं –

1) मैं वह धनु हैं जिसे साधने में प्रत्यंचा टूट गयी है
स्खलित हुआ है बाण यद्यपि ध्वनि दिगदिगन्त में फूट गयी है।
यह ध्वनि ही परम्परा की टंकार है

'नया कवि : आत्मस्वीकार' करता है कि

2) किसी का सत्य था मैंने संदर्भ से जोड़ दिया।
कोई मधुकोष काट लाया था मैंने निचोड़ दिया।

x x x

यों मैं कवि हूँ आधुनिक हूँ नया हूँ

काव्यतत्व की खोज में कहां नहीं गया हूँ।

8.3.6 आधुनिकता और समसामयिकता

अज्ञेय जी के काव्य में आधुनिकता का अर्थ है – नवीनता और मौलिकता, दृष्टि से मध्ययुगीन श्रद्धावादी संस्कारों से मुक्ति तथा नवीन संवेदना की बौद्धिक आग के प्रति लगाव। वास्तव में, नए काव्य में आधुनिकता का अर्थ है –'आधुनिक संवेदना'। प्रश्न उठता है कि क्या संवेदना के साथ 'नयी' या 'पुरानी' जैसा कोई भी विशेषण लगाना उचित है? क्या संवेदना अपने आप बदलती है या युग दृष्टि ही संवेदना को बदलने के लिए विवश करती है? फिर आधुनिकता इस दृष्टि से मूल्य नहीं है, प्रक्रिया है आप चाहें तो उसे इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं कि कथ्य को नवीन अंतर्दृष्टि से सम्पन्न करने वाली और रचनात्मकता को युग की मनोभूमिका से जोड़कर अभिव्यक्ति देने वाली प्रक्रिया ही आधुनिकता है। नारी के प्रति, सामाजिक शोषण के प्रति, विज्ञान और तकनीकी युग के प्रति, बौद्धिक चुनौतियों के प्रति बदलती दृष्टि आधुनिकता है। नारी को प्राचीन सम्बोधनों से दूर रखकर वे कहते हैं – 'मैं कहूँगा हरी बिछली घास हो तुम।' आधुनिकता की दृष्टि के कारण ही उन्हें कहना पड़ता है –'ये उपमान मैले हो गए हैं।'

समसामयिकता का आग्रह तात्कालिकता का आग्रह नहीं है। समसामयिकता का अर्थ है– वर्तमान का आग्रह। एक प्रकार समसामयिकता का आग्रह भी अज्ञेय में बदलते संदर्भो में नवीन सर्जनात्मकता का आग्रह है। ध्यान रखना होगा कि यहाँ समसामयिकता भी अतीत की वर्तमानता से जुड़कर ही रचना में आई है।

8.3.7 मानव–मूल्यों के संदर्भ में नए व्यक्तित्व की खोज

साहित्य की सम्पूर्ण रचनात्मकता का केन्द्र बिन्दु है – मनुष्य। नयी कविता में मानव की रचनात्मकता के परिवेश से उपजा नया इतिहास भूगोल है। अज्ञेय का सृजन इस नए मानव को परिभाषित करने का प्रयत्न करता है। प्रश्न उठता है यह नया मनुष्य कौन है? क्या वह आदर्श नायक, महा–मानव, लघु मानव या साधारण जन है या फिर अहंग्रस्त, यौन विकृतियों का पुंज, मूल्यों के खोखलेपन से बेचैन कोई आत्मनिर्वासित व्यक्ति है? अज्ञेय इसे 'लघु मानव' कहते हैं। जिसका अर्थ है अहंग्रस्त आत्मनिर्वासित व्यक्ति आधुनिक यान्त्रिक समाज ने जिसे 'अंगूठा कटा एकलव्य' बना दिया है। मानव–मूल्यों तथा मानव व्यक्तित्व की व्याख्याओं में अज्ञेय भारतीय दर्शन का सहारा लेते हैं, पर पूरी तरह उसी को सब कुछ नहीं मानते हैं उनकी दृष्टि में श्रमरत, कर्मरत मानव के प्रति आस्था है 'नर जिसकी अनझिप आँखों में नारायण की व्यथा भरी है'। नए मानव की विवेक वयस्कता में अज्ञेय की आस्था है –'भीड़ में दिख जाता मानव भी उनकी दृष्टि से ओझल नहीं है'–

> रुई धुनता है गारा सानता है खटिया बुनता है
> मशक से सड़क सींचता है।
> रिक्शों में अपना प्रतिरूप लादे खींचता है
> जो भी जहाँ भी पिसता है –
> पर हारता नहीं, न मरता है

पीड़ित श्रमरत मानव
अविजित दुर्जेय मानव
कमकर, श्रमकर, शिल्पी, स्रष्टा
उसकी मैं कथा हूँ।

(मैं वहाँ हूँ)

8.3.8 प्रकृति का लय का उल्लास

अज्ञेय की प्रकृति–दृष्टि स्वतंत्र मानव–चेतना का उल्लेख है। स्वतंत्र व्यक्ति की अवधारणा ही वह केन्द्र बिन्दु है जहाँ अज्ञेय शक्ति संचय करते हैं। मानव और प्रकृति के गोचर अनुभवों को वे मूल से पकड़ते हैं – विशेषकर के चित्रों में। प्रकृति के दुर्लभ चित्र वे आंकते है। उनके कवि की आँख से देखी जाकर हर चीज विशिष्ट हो उठती है। सागर, नदी, निर्झर, फूल, पत्ते, वनपाखी, बादल, वसंत, फूल–पौंधे, वृक्ष, पर्वत, गाँव आदि सभी के चित्र बड़े ही विशिष्ट हैं – 'महावृक्ष के नीचे' (1973) बैठकर वे प्रकृति का गान सुनते हैं। पर्वतीय प्रकृति के चित्रों की काव्य रंगशाला है। अज्ञेय प्रकृति से तदाकार हैं और जीवन की कालिदासीय लय 'आषाढ़ की निशानी' कविता में सुनते हैं –

घास हरी झुलसानी
मानिक के झूमर सी
झूमी मधु मालती
झर पड़े जीते पीले अमलतास
चातकी की वेदना विरानी
बादलों का हाशिया है आसमान –
बीच कूँचों की डार कि, लिखी पांत काली बिजली की ।
आसाढ़ की निशानी! ओ पिया पानी!

अज्ञेय को सागर टेरता है, नदियाँ दुलारती हैं, बादल माथा सहलाते हैं, वृक्ष दुलराते हैं। किरीटी तरु की 'असाध्य–वीणा' इस प्रियवंद के हाथों ही बजती है। प्रकृति मानव को सभी भीतरी–बाहरी बंधनों से खोलती है और मुक्त रहने का संदेश देती है।

8.3.9 जीवन–दर्शन

अज्ञेय के जीवन–दर्शन पर भारतीय वेदान्त और मानववाद का गहरा प्रभाव है। इस चिंतक को बौद्ध–दर्शन की करुणा दृष्टि में भी आस्था है। किन्तु इनका जीवन–दर्शन अनास्थावादी–अस्तित्ववादी नहीं है। भारतीय जीवन–दृष्टि में उनकी गहन आस्था है वे मानते हैं कि विद्या वही है जो मुक्त करती है। यही सन्तदर्शन उनमें रच–रच गया है। उनके विचार से जीवन का सबसे बड़ा मूल्य है – मानवीय स्वतंत्रता। इसी मूल्य के लिए पीढ़ियाँ युद्ध करती हैं, प्राण गंवाती हैं। आज तक मानव लगातार पराधीनता के खिलाफ संग्राम लड़ता चला आ रहा है। अज्ञेय में मार्क्सवादी जीवन–दर्शन के प्रति आस्था नहीं है। वे उसे सतही भौतिकता और छिछले चिंतन की दृष्टि कहकर नकार देते हैं। अज्ञेय का विचार है कि मार्क्सवादी एक ढंग से व्यक्ति की स्वतंत्रता छीनता है और सामूहिकता के नाम पर एक खास ढंग से सोचने को विवश करता है। वह लोकतांत्रिक मूल्यों को दबाता है। उनकी जीवन–दृष्टि में मानव वही है जो स्वाधीन होकर समाज के विषय में सोच सके। वह नहीं जो 'पार्टी', 'वाद' या किसी 'साम्प्रदायिक गठबंधन

का झंडा' उठाये घूमता फिरे। अज्ञेय क्षण और काल पर सोचते हैं पर क्षणवादी नहीं है। भारतीय सांस्कृतिक संवेदना की विश्व–दृष्टि ही अज्ञेय के जीवन–दर्शन का पर्याय है।

बोध प्रश्न– 2

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दें।

1. अज्ञेय का काव्य–यात्रा के विकास की विशेषताओं का दस पंक्तियों में निरूपण कीजिए।

2. अज्ञेय की काव्य संवेदना पर पाँच पंक्तियों में विचार कीजिए।

3. अज्ञेय की अनुभूति पर किन विचार–दृष्टियों का प्रभाव है? सात–आठ पंक्तियों में विचार कीजिए।

4. 'अज्ञेय का नव्य रहस्यवाद आध्यात्मिक नहीं है' इस कथन पर चार पंक्तियों में अपने विचार लिखिए।

5. प्रयोग, प्रगति तथा परम्परा से संबंधित अर्थों पर आठ वाक्यों में टिप्पणी कीजिए।

6. नए व्यक्तित्व की खोज पर चार वाक्यों में अपना मत व्यक्त कीजिए।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

7. अज्ञेय के जीवन–दर्शन पर सात वाक्यों में अपने विचार लिखिए।

....

....

....

....

8. 'प्रकृति लय का उल्लास अज्ञेय की मूल चेतना है' इस कथन पर चार वाक्यों में विचार कीजिए।

....

....

....

....

8.4 अभिव्यंजना–शिल्प का सौन्दर्य

अज्ञेय के आरंभिक काव्य–शिल्प पर छायावादी प्रभाव है लेकिन धीरे–धीरे उनकी कविता ने भावावेग के स्थान पर संयम, बौद्धिकता, शब्द का सही प्रयोग, शब्द की आत्मा से साक्षात्कार आदि को अपनाकर गैर–रोमांटिक काव्य की सम्भावनाओं को उजागर किया है। इलियट की भाँति अज्ञेय यह स्वीकार करते हैं कि हमारा ध्यान कवि पर नहीं कविता पर रहना चाहिए। वे मानते हैं कि कविता में वस्तु और रूप अभिन्न होते हैं। इसलिए रचनाकार का संघर्ष वस्तु और रूप दोनों से निरंतर चलता है। व्यक्तित्व का उत्सर्ग उसका विनाश नहीं है, क्योंकि उसके द्वारा वह उस परम्परा को परिवर्तित कर रहा है। जिस पर वह निछावर है। हमें निरंतर मन की उस धातु को ठीक से परखना होगा जिससे सृजन उद्भूत है। ध्यान रहे रचने वाले प्राणी और भोगने वाले में अन्तर होता है – यह अन्तर जितना अधिक होता है रचनाकार उतना ही बड़ा होता जाता है। कला के प्रति निर्वैयक्तिकता और जीवन के प्रति निस्संगता का भाव अज्ञेय की काव्य–कला को छायावादी–कला से अलग करता है।

शिल्प सिर्फ 'फार्म' नहीं है। वह कथ्य को सम्प्रेषित करने का अनिवार्य माध्यम है। इसलिए अपने से पहले के कवियों की तुलना में उन्होंने शिल्प को अधिक महत्व दिया है। कुछ आलोचकों ने इस बात को ठीक से न समझने के कारण अज्ञेय को रूपवादी (फॉर्मेलिस्ट) तक कह दिया है। काव्य में शब्द के माध्यम से अर्थ का प्रकाश होता है और शब्द–विधान का संबंध शिल्प से है। अज्ञेय नवीन काव्य संवेदना के राग दीप्त सत्य को व्यक्त करने के लिए एक कुशल कलाकार की भाँति शिल्प–उपकरणों का प्रयोग करते हैं। उन्हें ज्ञान है कि मौन भी अभिव्यंजना है। पर वे कोरे शिल्प की बात नहीं करते हैं। उनमें पुराने शिल्प का नया संस्कार परिष्कार और नए शिल्प उपकरणों की खोज का क्रम जारी है। शिल्प का प्रथम प्रभावशाली उपकरण है – काव्य–भाषा।

8.4.1 काव्य–भाषा की सर्जनात्मकता

अज्ञेय ने खड़ी बोली काव्य–भाषा की सर्जनात्मकता का हर संभव तरीके से विस्तार किया है। उन्होंने शब्द को नए भाव–बोध से जोड़कर कहा है –

i) आज के कवि की सबसे बड़ी समस्या है – कवि अनुभव करता है कि भाषा का पुराना व्यापकत्व उसमें नहीं है– शब्दों के साधारण अर्थ से बड़ा अर्थ हम उसमें भरना चाहते हैं, पर उस बड़े अर्थ को पाठक के मन में उतार देने के साधन अपर्याप्त हैं। वह या तो अर्थ कम पाता है या कुछ भिन्न पाता है। (तार सप्तक–वक्तव्य)

ii)नयी कविता की प्रयोगशीलता का पहला आयाम भाषा से संबंध रखता है।

iii) नयी कविता के कवि को यह मानने में कोई कठिनाई नहीं होती है कि कोई शब्द किसी दूसरे शब्द का सम्पूर्ण पर्याय नहीं हो सकता, क्योंकि प्रत्येक शब्द के अपने वाच्यार्थ के अलावा अलग–अलग लक्षणाएँ और व्यंजनाएँ होती हैं – अलग संस्कार और ध्वनियाँ।

iv) प्रत्येक शब्द का समर्थ उपयोक्ता उसे नया संस्कार देता है। इसी के द्वारा पुराना शब्द नया होता है। यही उसका कल्प है।

v) जरा भाषा के मूल प्रश्न पर शब्द और उसके अर्थ के संबंध पर ध्यान दीजिए शब्द में अर्थ कहाँ से आता है, क्यों और कैसे बदलता है, अधिक या कम अर्थ कहाँ से पाता है? चमत्कार मरता रहता है और चमत्कारिक अर्थ अभिधेय बनता रहता है। यो कहें कि कविता की भाषा निरंतर गद्य की भाषा होती जाती है। इस प्रकार कवि के सामने हमेशा चमत्कार सृष्टि की समस्या बनी रहती है। वह शब्दों को निरंतर नया संस्कार देता चलता है और ये संस्कार क्रमशः सार्वजनिक मानस में पैठकर ऐसे हो जाते हैं कि उस रूप में कवि के काव्य के नहीं रहते। 'बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है'। (दूसरा सप्तक : वक्तव्य)

अज्ञेय ने काव्य–भाषा में नए अर्थ के रागात्मक संबंध को स्थापित करने में महत्वपूर्ण कार्य किया है। वे उस अर्थ की शब्द में प्रतिपत्ति करते हैं जो नए रागात्मक संबंध को स्थापित करें और भाव को सम्प्रेषित करते हुए उसका पाठक से साधारणीकरण भी।

महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि अज्ञेय की काव्य–भाषा पर उनका ही बनाया हुआ काव्य–भाषा प्रतिमान खरा उतरता है। काव्य के जो भी गुण बताए जाते हैं या बताये जा सकते हैं, अन्ततोगत्वा भाषा के ही गुण हैं। 'काव्य सबसे पहले शब्द है और सबसे अन्त में भी यही बात बच जाती है कि काव्य शब्द है।' सारे कवि धर्म इसी परिभाषा से निःसृत होते हैं। शब्द का ज्ञान, शब्द की अर्थवत्ता की सही पकड़ ही कृतिकार को कृती बनाती है। ध्वनि, लय, छंद आदि के सभी प्रश्न इसी से निकलते हैं और इसी में विलय होते हैं। इतना ही नहीं सारे सामाजिक–संदर्भ भी यहीं से निकलते हैं (सीढ़ियों पर धूप में – भूमिका)।

अज्ञेय संवेदना और भाषा के तनाव को झेलकर काव्य रचते हैं और अनुभव को शब्द में भरते हैं ताकि पाठक तक उसका ठीक–ठीक अर्थ संप्रेषित हो सके। वे 'शब्द और सत्य' कविता में यही बात अपने पाठक से कहते है –

> दोनों जो अपने बीच एक दीवार बनाये रहते हैं
> मैं कब, कैसे, उनके अनदेखे इनमें सेंध लगा दूँ
> या भर विस्फोटक उसे उड़ा दूँ
>
> x x x x

कब, कैसे, किस आलोक स्फुरण में इन्हें मिला दूँ,
दोनों जो हैं बन्धु, सखा, चिर सहचर मेरे।

(अरी ओ करुणा प्रभामय)

डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी का अज्ञेय की काव्य–भाषा के लिए यह निष्कर्ष सही है कि काव्य–भाषा के लिए उन को जागरूकता वैचारिक और रचनात्मक दोनों स्तरों पर दिखाई देती है।

दरअसल, वह काव्य भाषा–छायावादोत्तर काव्य–भाषा के विकास का साक्ष्य प्रस्तुत करती है। निराला जी को छोड़कर सभी छायावादियों की काव्य–भाषा की ताजगी कुम्हलाती चली गई। निराला ने सही शब्द प्रयोग के लिए तत्सम शब्दावली का 'राम की शक्ति पूजा' जैसी लम्बी कविता में रचनात्मक उपयोग किया। प्रगतिवादी 'सामान्य भाषा' की बात करते रहे पर सहज सर्जनात्मक भाषा को जन्म न दे सके। यह ठीक बात है कि अज्ञेय की आरंभिक काव्य–भाषा सादी, रंगहीन और कमजोर है किन्तु 'हरी घास पर क्षण भर' की कविताओं के बाद वह प्रौढ़ समर्थ और सर्जनात्मक सम्भावनाओं से भर जाती है।

'तार सप्तक' के बाद काव्य–भाषा के क्षेत्र में अज्ञेय क्रांति उपस्थित करते हैं। उनकी भाषा में तद्भव शब्दों का प्रयोग बढ़ जाता है और भाषा प्रयोग–विधि में ठेठ ग्रामीण जीवन की 'शब्दावली', 'शोषक भैया', 'बावरा अहेरी', 'हमने पौधे से कहा', 'मैं वहाँ हूँ'। जैसी कविताओं में तद्भव शब्दावली की भरमार हो उठती है। यहाँ गद्य–पद्य की भाषा का अंतर कम हो गया है। 'ठाठ फकीरी', 'मँगनी', 'हुनरमंद', 'मनियारी' जैसे लोक जीवन के शब्द बढ़ जाते हैं। कविता में तद्भव देशज शब्दों ने अर्थ की सहज अभिव्यक्ति का रूप–रंग निखार दिया है। अज्ञेय के कथा साहित्य और निबन्धों में अंग्रेजी–संस्कृत के तत्सम शब्दों की अधिकता है पर काव्य–भाषा में सहज ठेठ देशी मिठास का स्वाद है।

अज्ञेय की असाधारण भाषा क्षमता का ही प्रमाण है कि वे बिंबभरी, प्रतीकमय, लक्षणा–व्यंजना प्रधान भाषा का आलोक पैदा करते हैं। पूरी शक्ति से अज्ञेय छायावादी–प्रगतिवादी भाषा से अलग किस्म की भाषा की खोज करते हैं। जैसे 'फिर छनेंगे हम/जमेंगे हम/कहीं फिर पैर टेकेंगे।' (नदी का द्वीप) कविता की इन काव्य–पंक्तियों में गद्य की वैचारिकता ध्वनित होती है। 'असाध्य वीणा' नामक लम्बी कविता में जीवन की सम्पूर्ण शब्दावली 'बटुली में बहुत दिनों के बाद अन्न की सौंधी खुदबुद' सुनाई देती है। इतना ही नहीं यह भाषा अर्थ–अनुभूति की लय–लहजे का अनुसरण करती है। भाषा में राग और आवेग का संयम है और वाक्यों में अनेक अर्थच्छायाओं का बोध, जैसे –'दुःख सबको माँजता' में है। गति और लहजे की उमंग से कवि अनुभूति को सम्प्रेषित करता है –

भिगो दो आह! ओ रे मेघ, क्या तुम जानते हो
तुम्हारे साथ कितने हियों में कितनी असीसें उमड़ आयीं है?

मुक्तिबोध की तुलना में अज्ञेय की काव्य–भाषा संस्कारी, चिकनी, संगीतमय, नाद–मधुर तथा परिष्कृत है। मुक्तिबोध ऊबड़–खाबड़ भाषा से कविता निचोड़ते हैं और अज्ञेय भाषा को रगड़कर–माँजकर चमकाकर। कहना न होगा कि भाषा प्रयोग का यह अन्तर दोनों के कवि व्यक्तित्वों का अन्तर भी है। पर एक समानता भी दोनों में है दोनों ही छायावादी काव्य–भाषा के

आभिजात्य को तोड़कर लोक–जीवन की भाषा को काव्यात्मकता में ढाल देते हैं। तत्सम शब्दावली अज्ञेय में प्रसाद से कम नहीं है पर उसका संदर्भ नया है। अज्ञेय को शब्द का गहरा ज्ञान है वे शब्द–शिल्पी, वाक सिद्ध कवि है। नयी कविता की काव्य–भाषा को उनकी काव्य–भाषा सहज ही समृद्ध और समर्थ बनाकर नयी अर्थ दीप्ति का मार्ग खोल देती है।

8.4.2 बिंब विधान

अज्ञेय की काव्य–भाषा की शक्ति उनके बिंब विधान में देखी जा सकती है। आरम्भ से ही वे बिंब प्रयोग के प्रति सतर्क–सावधान रहे हैं। यौन प्रतीकों की बिम्बमाला 'इत्यलम' की कविताओं में बहुत है –

सो रहा है झोंप अधियारा नदी की जांघ पर।

किसी भी भाव या विचार को मूर्त करने के लिए प्रकृति के नाना रूपों के बिंबों से यह काव्य–भाषा समृद्ध हुई है। ऋतुराज वसंत का एक ताजा बिंब देखिए –

गंध वह उड़ रहा पराग धूल–झूल
काँटों का किरीट धारे बने देवदूत
पीत वसन दमक उठे तिरस्कृत बबूल।

(ऋतुराज)

वसंत की महिमा से तिरस्कृत बबूल देवदूत बन गया। तब अन्यों का तो कहना ही क्या।

कविताओं में प्रकृति बिंब कहीं अलंकृत है कहीं मानवीय, कहीं प्रकृति का ही रूप। रूप, रंग, रस, गंध, स्पर्श आदि के ऐन्द्रियता भरे चित्र अज्ञेय में जड़े–पड़े है –

तुम्हारी देह मुझको कनक चम्पे की कली है,
दूर से ही स्मरण में जो गंध देती है

(देहगंधा)

संवेदनात्मक दृश्य बिंब इस पूरी कविता के सौन्दर्य लोक है जैसे –

पति सेवारत शाम
उचकता देख पराया चाँद
लला कर ओट हो गई।

नारी का यह लज्जा भरा चित्र बेहद रूप–भरा है।

सागर, मछली, नदी, पेड़, पहाड़, पर्वत, वसंत, घास, पर्वतीय शाम, सांवरी गोरी के बिंब बार–बार आदिम रूपों में आते हैं। अवचेतन मन के आदिम बिंब प्रकृति–चित्रों में दमकते हैं। यथा –

बादलों का हाशिया है आसमान।

पौराणिक मिथिकल बिंब कम आए हैं पर जहाँ आए है वहाँ अर्थ–दीप्ति के साथी बनकर यथा –

लो यह हरी भरी धरती यह सवत्सा कामधेनु मैंने तुम्हें दी।

'कामधेनु' का बिंब यहाँ पुराण–स्मृतियों की कौंध है।

प्रायः भाव को मूर्त और पारदर्शी बनाने के लिए अज्ञेय बिंब माला रचते हैं। नाद और लय के बिंब तक उनकी काव्यात्मकता में सहज रूप से प्रवेश पाते हैं। उनकी प्रसिद्ध कविता 'असाध्य वीणा' से एक उदाहरण लीजिए–

हाँ मुझे स्मरण है
बदली कौंध पत्तियों पर वर्षा बूंदों की पट–पट
घनीरात में महुए का चुपचाप टपकना
चौंके खग शावक की चिहुक।
शिलाओं के दुलराते पन झरनों के
द्रुत लहरीले जल का कल–निनाद।
..........में छनकर आती पर्वती गाँव के उत्सव–ढोलक की थापा

x x x

झिल्ली दादुर, कोकिल, चातक की झंकार पुकारों की यति में
संसृति की साँय–साँय।

गति, नाद, तड़प, चिंता, नागर, ग्रामीण संवेदना के बिंब अज्ञेय काव्य को एक नया आयाम देते हैं। रूप–रंग, ध्वनि–गंध और भाव–रस के संश्लिष्ट–बिंब प्रयोग अज्ञेय ने सफलता से किए हैं।

8.4.3 प्रतीक–विधान

प्रतीक–विधान ने अज्ञेय की काव्य–भाषा को सम्पन्न बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। अज्ञेय ने पश्चिमी प्रतीकवादी आंदोलन को लेकर शोर नहीं किया किन्तु भारतीय प्रतीक परम्परा की आदिम शक्ति का उन्हें अहसास है। रचनाकार अज्ञेय मानते हैं कि 'कोई भी स्वस्थ साहित्य प्रतीकों की, नये प्रतीकों की सृष्टि करता है, और जब वैसा करना बंद कर देता है तब जड़ हो जाता है या जब जड़ हो जाता है तब वैसा करना बंद करके, पुराने प्रतीकों पर ही निर्भर रहने लगता है।' (आत्मपरक पृ. 37) लोक–काव्य और लोकगाथाओं ने हजारों प्रतीकों की सृष्टि की है और मानवीय रचनात्मकता को नया अर्थ दिया है। अज्ञेय जी यह भी जानते हैं कि 'जो सीधे–सीधे अभिधा में नहीं बंधता उसे आत्मघात करने या प्रेषित करने के लिए प्रतीक काम देते हैं। x x x
सत्य के अथाह सागर में वह (कवि) प्रतीक रूपी कंकड़ से उसकी थाह का अनुमान करता है। **(आत्मनेपद पृ. 45)**

अज्ञेय ने प्रतीकों की अनेकार्थता का सर्जनात्मकता में मुक्त मन से उपयोग किया है। प्रतीकों के प्रति उनमें एक ऐसा जन्मजात अनुराग है कि अपने सभी काव्य–संकलनों के नाम भी प्रतीकों पर

रखें हैं, यथा – 'हरी घास पर क्षण भर', 'बावरा अहेरी', 'आँगन के पार द्वार', 'सागर मुद्रा', 'नदी की बाँक पर छाया', 'महावृक्ष के नीचे' आदि।

अज्ञेय ने प्रकृति, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, राजनीति, धर्म, दर्शन, पुराण, संस्कृति आदि विभिन्न क्षेत्रों के प्रतीकों का काव्य में भरपूर प्रयोग किया है। प्रतीकों की सृष्टि करने में अज्ञेय वैदिक ऋषियों की तरह पटु हैं। उनका काव्य–जगत्। प्रकृति के नए–पुराने प्रतीकों से भरा पड़ा है। अज्ञेय के प्रिय प्रतीक हैं – सागर, मछली, हारिल, पौधा, वन, वृक्ष आदि। 'सागर' के प्रति उनका आकर्षण कालिदास तथा जयशंकर प्रसाद की याद दिलाता है। वे कहते हैं–

1) मैंने देखा एक बूंद सहसा उछली सागर के झाग से
2) खुल गयी नाव संझा, सूरज डूबा सागर तीरे।
3) जब–जब सागर में मछली तड़पी तब–तब हमने उसकी गहराई को जाना।
4) मटियाया सागर लहराया।

तरंग की पंखयुक्त वीणा पर पवन ने भर उमंग से गाया
फेन झालरदार मखमली चादर पर मचलती किरण अप्सराएँ भारहीन पैरों से थिरकी ।

अज्ञेय के काव्य में सागर उन्मुक्तता, विराटता, विशालता, मर्यादा, गहराई, आत्म–विस्तार का प्रतीक है और सागर में उछलती मछली, अस्तित्व आकांक्षा और जिजीविषा का प्रतीक। क्योंकि –

> 'अर्थ हमारा जितना है, सागर में नहीं हमारी मछली में है
> सभी दिशा में सागर जिसको घेर रहा है।'

मछली, अज्ञेय का प्रिय प्रतीक है, जल से बाहर निकालते ही वह तड़पती है। यह मछली जीना और जीवन दोनों का प्रतीक है। अज्ञेय की एक प्रसिद्ध कविता है – 'सोन मछली'। यह कविता आलोचकों को वाद–विवाद के लिए पसंद रही हैं और अज्ञेय को जीवनदर्शन की अभिव्यक्ति के लिए।

> हम निहारते रूप / काँच के पीछे / हाँफ रही मछली /
> रूप तृषा भी / और काँच के पीछे / है जिजीविषा।

मुक्ति और जीने की लालसा की प्रतीक छवियाँ अज्ञेय में हर जगह चमकती–दमकतीं मिलती हैं। अज्ञेय में खोज का अर्थ है – मानवीय गरिमा और स्वतंत्रता की खोज। मछली को सागर घेरता है और 'हारिल' की वाचालता को मौन घेरता है। पर हर सामाजिक वर्जना के विरोध में अज्ञेय की कविता विद्रोह करती है। स्वयं अज्ञेय विद्रोही रूप में प्रसिद्ध रहे हैं, प्रकृति उन्हें बन्धनों से खोलती है। मौन भी कहता है –

> कहा सागर ने चुप रहो। मैं अपनी अबाधता जैसे सहता हूँ अपनी मर्यादा तुम सहो।
> मौन भी अभिव्यंजना है, जितना तुम्हारा सच उतना ही कहो, कहा नदी ने भी।

'नदी' अज्ञेय काव्य का प्रिय प्रतीक रही है। जिसका प्रतीकार्थ है – परम्परा, प्रवाह, निरन्तरता, सदानीरा, जीवनदामिनी, इतिहास, स्मृति आदि। नदी प्रतीक के अनगिनत अर्थ उनकी कविता में मौजूद हैं। वे प्रार्थना करते रहे हैं –

नदी तुम बहती चलो।
भूखंड से जो दाय हमको मिला है मिलता रहा है
माँजती संस्कार देती चलो।

(नदी के द्वीप)

नदी, सागर, चाँद, साँझ, वृक्ष, पौधा, वसंत, हेमन्त, पर्वत, गाँव, फूल, चिड़िया जैसे सैकड़ों प्रतीक इस काव्य–सर्जना का सौन्दर्य है, पर इन प्रतीकों के प्रति उनका अनुराग रहस्यवादी अनुराग नहीं है। इनमें प्रकृति के मुक्त साहचर्य, सहयोग का भाव है जो यांत्रिकता, शहरी जीवन की भीड़–संस्कृति के विरोध से जन्मा है। वे नगर सभ्यता पर व्यंग्य करने के लिए 'साँप' जैसे प्रतीक का प्रयोग करते हैं। यौन प्रतीकों को भी अज्ञेय ने भाव–परिष्कार की दिशा दी है। कारण – 'आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति यौन वर्जनाओं का पुंज है'। (तार सप्तक) इस कुंठित व्यक्ति को मुक्त करना है–इसे हरी घास, धूप, चाँदनी का अर्थ समझाना है। वे पौधे से गरमाई, मिठास, हरियाली, उल्लास, गंध, मुक्त खुलापन सभी कुछ माँगते हैं। इस काव्य में यायावरी मुद्रा की अधिकता ही नहीं है. यायावरी भाव–प्रतीक बहुत है। यही यायावर भाव कहता है –

अच्छी कुंठारहित इकाई साँचे ढले समाज से
अच्छा अपना साज़ फकीरी मँगनी के सख साज से।

(अरी ओ करुणा प्रभामय)

मेघ, ज्वार, निदाघ, रावण–अहिल्यां, राम, गरुड़, नृत्यरत मयूर, पशु, चातक, केकी, क्रौंच, कीर, हारिल, गुलाब, पलास, मधुमालती, कचनार, टेसू आदि सभी प्रतीक बनकर आये हैं। नयी कविता में प्रतीकों का इतना बड़ा स्रष्टा कोई दूसरा कवि नहीं है।

8.4.4 उपमान योजना

'उपमान' में 'अप्रस्तुत' से ज्यादा व्यापक अर्थ है। अलंकार योजना के अन्तर्गत उपमेय–उपमानों में उपमान का विशिष्ट महत्व है। नया भाव, नया उपमान खोजता है और नया उपमान नए सौन्दर्य बोध को जन्म देता है। उपमानों से ही सर्जना नयी होती है यह जानते और मानते हुए अज्ञेय ने नए उपमानों के लिए जोरदार आंदोलन ही खड़ा कर दिया। इस संबंध में उनकी प्रसिद्ध कविता 'कलगी बाजरे की' नए उपमानों की महत्व–प्रतिष्ठा का घोषणा–पत्र ही बन गई। इस कविता ने निरंतर प्रयोग से पुराने उपमानों के घिस जाने की चर्चा को केन्द्र में रखा और कहा कि निरंतर उपयोग से परम्परागत उपमानों का अर्थ सौन्दर्य नष्ट हो जाता है तब कवि को नवीन अनुभव–अनुभूति के लिए नए उपमानों की आवश्यकता पड़ती है। यदि कवि प्रेयसी को 'ललाते नभ की अकेली तारिका' या 'शरद के भोर की नीहार न्हाई टटकी कली' नहीं कहता तो इसका कारण यह नहीं है कि उसके हृदय में प्रेम नहीं है या प्रेम की घनता कम हो गई है या विकृति आ गई है। कारण है –

ये उपमान मैले हो गए हैं,

देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच –
कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।

नए उपमान या अप्रस्तुत को लाकर कवि ने अपनी प्रेयसी का रूप–बिंब 'हरी बिछली घास हो तुम' या 'शरद के सांझ के सूने गगन को पीठिका पर डोलती कलगी अकेली बाजरे की' कहा है। इसी प्रकार अज्ञेय ने अपने समान काव्य में नए उपमानों का प्रयोग किया है। परम्परागत उपमानों को लाने में वे हिचके नहीं हैं पर परम्परागत उपमानों का भी नएढंग से नया संस्कार कर दिया है। 'इत्यलम' काव्य–संग्रह में झंझा, सांध्य रश्मि, तारा, निकुंज, उच्छवास आदि बहुत से पुराने छायावादी उपमान आए हैं। कहना न होगा कि अज्ञेय की उपमान योजना, अर्थ–व्यंजक, एवं नवीन संवेदना के सम्प्रेषण के लिए महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

8.4.5 छंद एवं लय

अज्ञेय छंदों की शास्त्रबद्ध परिपाटी के खिलाफ खुला विद्रोह करते हैं। उनके अनुसार 'छंद का अर्थ केवल तुक या बँधी हुई समान स्वर मात्रा या वर्ण संख्या नहीं है।' छंद भाव योजना को संगठित करने और नियंत्रित करने का काम करता है। छापाखाने के आविष्कार के युग से पहले कविता वाचिक परम्परा की चीज थी। वह गाकर सुनाने से याद हो जाती थी। इसीलिए वह 'श्रव्यकाव्य' कहलाती थी। पर मुद्रण युग ने नयी स्थिति उत्पन्न कर दी। अब कविता विराम–संकेतों, चिह्नों से छपने और पढ़ी जाने लगी। इस क्रिया में कान का काम आँख से ज्यादा लिया जाने लगा। फलतः आज की कविता 'पाठ्य कविता' होकर अपनी इन्द्रिय बदल रही है। कविता के इस इन्द्रियगत बदलाव का कविता की छंद योजना, वाक्य गठन, रूप–संरचना, यति–गति विस्तार, व्याकरणिक–ढाँचे पर गहरा प्रभाव पड़ा है। मुद्रित कविता में मनोगत भावों की मनोभूमिका को स्पष्ट करने के लिए विराम–संकेतों, मौन लकीरों, चिह्नों का प्रयोग बढ़ गया है। अज्ञेय अपने मनोभावों को व्यक्त करने के लिए कोलन, कोमा, विस्मयबोधक चिह्न, उद्धरण, पंक्तियों के बीच गैप तथा अनेक प्रकार के विराम–चिह्नों का उपयोग करते हैं ताकि उनका मूल भाव मूर्त हो सके, पाठक तक पहुंच सके। 'एक सीमा तक अज्ञेय ने परम्परागत छंद शास्त्र से काव्य को मुक्ति दी है या नए छंदों के 'अर्थलय', 'नादलय', 'गद्यलय', 'भाव की आन्तरिकलय' वाले छंद प्रयोग किए हैं। उनके छंद भाषा की ध्वनियों का संगठन करते हैं साधारण बोलचाल की गद्यलय को अपनाते हैं और अभिप्रेत को उनमें भर देते हैं। लय को अज्ञेय आदर देते हैं और 'भाव–लय' की पकड़ को कविता की सिद्धि मानते हैं। अज्ञेय ने 'मुक्त छंद' की मुक्त लय को सच्चा अर्थ 'असाध्यवीणा' जैसी लंबी कविता में दिया है। लोक–धुनों लोक–लयों के आधार पर अज्ञेय ने नए गीत लिखे हैं – उनका एक गीत –

ओ पिया पानी बरसा
ओ पिया पानी बरसा।
घास हरी हुलसानी –
मानिक के झूमर सी –
झूमी मधुमालती
झर गए जीते पीत अमलतास
चातक की वेदना विरानी

लोक गीतों की जिस अदा को केदारनाथ अग्रवाल, भवानीप्रसाद मिश्र आदि ने उठाया है उसकी एक अदा का नाम अज्ञेय भी है।

बातचीत को लय को हू–ब–हू कविता में उतराने के लिए अज्ञेय भाषा की तद्भावना–देशजता में पूरी तरह डूबकर 'अकेली न जैयो राधे जमना के तीर' जैसी कविता में नर–नारी संवाद का कौशल दिखा सकते हैं। गद्य की लय को ठीक से लहजे में बांधकर रच सकते हैं –

> 'उस पार चलो ना! कितना अच्छा है नरसल का झुरमुट'

'आन्तरिक भाव, संगीत की लय को कविता में उतारने में अज्ञेय को भारतेन्दु, श्रीधर पाठक, निराला, पन्त जी, केदारनाथ अग्रवाल जैसी सफलता मिली है। वाक्य व्यवस्था जहाँ टूटी–फूटी है वहां आधुनिक जीवन की टूट–फूट का भाव ही व्यक्त हुआ है। यदि इन छंदों में संगीत–संगति की कमी है तो आज के सामाजिक–राजनीतिक जीवन में ही तुक, व्यवस्था और संगति कहाँ है? अव्यवस्था अज्ञेय की अधिकांश कविताओं – गीतों में मिलती है। उसका कारण हमारी सामाजिक अव्यवस्था में ही खोजा जाना चाहिए।

बोध प्रश्न –3

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दें।

1. अज्ञेय के अभिव्यंजनाशिल्प की विशेषताएँ चार–पाँच वाक्यों में निरूपित कीजिए।

   ....
   ....
   ....

2. अज्ञेय की काव्य–भाषा की पाँच विशेषताएँ बताइए।

   ....
   ....
   ....
   ....

3. अज्ञेय के बिंब विधान की सात पंक्तियों में चर्चा कीजिए।

   ....
   ....
   ....
   ....

4. अज्ञेय के प्रिय प्रतीक कौन से हैं? उनके प्रकृति संबंधी प्रतीकों की मूल प्रवृत्ति पर संक्षेप में लिखिए।

   ....
   ....
   ....
   ....

5. 'अज्ञेय की उपमान में नयापन है'। इस कथन पर साथ–आठ वाक्यों में विचार कीजिए।

....

....

....

....

8.6 सारांश

हिंदी की आधुनिक काव्य–धारा में, भारतेन्दु, श्रीधर पाठक, जयशंकर प्रसाद, निराला जी की दिशा–दृष्टि को सांस्कृतिक संवेदन और संस्कार के साथ रचनात्मकता में ढालने वालों में अज्ञेय का नाम स्मरणीय है। वे हमारी परम्परा की आधुनिकता है, तथा काव्य भाषा की रचनात्मक सम्भावनाओं को भारतीयता के मूल स्त्रोतों से जोड़ने वाले रचनाकार टी.एस. इलियट, डी.एच. लारेन्स तथा पश्चिम के चिंतकों से प्रभावित होने पर भी अज्ञेय की मूल काव्य संवेदना, काव्य मूल्य–दृष्टि एकदम भारतीय है। वे वस्तु और शिल्प के नए से नए प्रयोगों से हिंदी कविता को समर्थ और सक्षम बनाते हैं। नवीन प्रवृत्तियों, नवीन आंदोलनों की अगुवाई करने के कारण उनके सृजन का ऐतिहासिक महत्व है। कहना न होगा कि मुक्तिबोध बाहर से नयी कविता को और अज्ञेय भीतर से नयी कविता को नया सौन्दर्य बोध देते हैं। मार्क्सवादी मुक्तिबोध और मनोविश्लेषणवादी अज्ञेय दोनों का काव्य–व्यक्तित्व मिलकर ही नयी कविता को भरा पूरा बनाता है। अज्ञेय को व्यक्तिवादी–क्षणवादी, भोगवादी कहकर आभिजात्यवादी भी सिद्ध किया गया है, पर इन आरोपों से वे बाहर के कवि है। छायावादोत्तर कविता में अज्ञेय का काव्य–चिंतन एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है और काव्य–सृजन नवीन भाव–बोध की सशक्त अभिव्यक्ति है।

8.7 शब्दावली

तार सप्तक (1943): सम्पादक अज्ञेय। सात कवि हैं – गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा और अज्ञेय। प्रयोगवाद की आधारभूत दस्तावेज।

नव्य रहस्यवाद: ईश्वर की ओर न जाकर जीवन–जगत् की जिज्ञासा का आत्मदर्शन।

साधारणीकरण: भारतीय रस–सिद्धांत में रस निष्पत्ति के भीतर इस सिद्धांत का जन्म। साधारणीकरण का अर्थ है – विशेष का सामान्य हो जाना। वैयक्तिक भाव का निर्वैयाक्तिक हो जाना।

अस्तित्ववाद : द्वितीय विश्वयुद्ध (1939–1942) के पश्चात पश्चिम में पैदा होने वाला अनास्थावादी दर्शन। इसे हेडेगर, कामू, सार्त्र, नीत्से जैसे दार्शनिकों ने बढ़ावा दिया।

बिंबवाद: अंग्रेजी साहित्य का 'इमेजिस्ट मूवमेंट' । 1913 ई. में एफ.एल. फ्लिट ने 'बिंबवाद' शीर्षक एक टिप्पणी लिखी। एजरा पाउण्ड ने सिद्धांत रूप में चर्चा की।

प्रतीकवाद : पश्चिम का 'सिम्बालिस्ट मूवमेंट' जिसे रेम्बों, मला ने स्थापित किया।

वाचालता: असंयम, चपलता।

वाजिक परम्परा: इस परंपरा में शिष्य सुनकर याद रखते थे। भारत में लम्बे समय तक काव्य–गायन की परम्परा रही। जिसे मुद्रण–कला के आविष्कार ने धक्का दिया।
भावावेग: छायावादी कविता का एक दोष । भाव के आवेग में बह जाना।
गैर–रोमांटिक: रोमांटिक काव्य की दृष्टि से छूटने की दिशा। रोमांटिक भाव–बोध में अतिशय भावुकता तथा कल्पनातिरेक रहता है।

8.8 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न –1

1. खुद लिखिए
2. देखिए 8.3
3. 'चिंता', 'भग्नदूत', 'इत्यलम'।
4. प्रयोगवादी तथा नयी कविता के कवि।
5. अज्ञेय ने सन् 1943 ई. में सात कवियों की कविताओं का एक काव्य संकलन सम्पादित किया। इस काव्य–संकलन का हिंदी काव्य में ऐतिहासिक महत्व है। इसने 'प्रयोगवाद' की प्रतिष्ठा की।
6. देखिए 8.2

बोध प्रश्न –2

1. अज्ञेय की काव्य यात्रा का आरंभ छायावाद युग के उत्तरार्ध से हुआ। देखिए 8.5
2. देखिए 8.6
3. देखिए 8.7
4. नव्य रहस्यवाद, 8.8
5. देखिए 8.9
6. देखिए 8.13
7. देखिए 8.12

बोध प्रश्न –3

1. अज्ञेय के अभिव्यंजना शिल्प में शिल्प शब्द 'फार्म' या 'टेकनीक' से ज्यादा व्यंजक अर्थ रखता है।
2. देखिए 8.4.1
3. देखिए 8.4.2
4. देखिए 8.4.3
5. देखिए 8.4.5

8.9 उपयोगी पुस्तकें

1. **रामस्वरूप चतुर्वेदी**: अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या : भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।
2. **नन्द किशोर आचार्य** : अज्ञेय की काव्य तितीर्षा : सूर्य प्रकाशन, मंदिर बीकानेर।
3. **नामवर सिंह**: कविता के नए प्रतिमान : राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

4. **रमेशचन्द्र शाहः** वागर्थ, सम्भावना प्रकाशन, हापुड़।
5. **स.ही. वात्स्यायन :** आत्मपरक, नेशनल पब्लिसिंग हाउस, नयी दिल्ली।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 9 : भवानी प्रसाद मिश्र

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 कवि परिचय
 9.2.1 जीवन परिचय
 9.2.2 रचनाकार–व्यक्तित्व
 9.2.3 कृतियाँ
9.3 काव्य संवेदना
 9.3.1 काव्यानुभूति
 9.3.2 कविता की मूल्य दृष्टि
 9.3.3 मानव और प्रकृति
 9.3.4 जन जीवन के संघर्षों की वाणी
 9.3.5 विसंगति और विडम्बना
 9.3.6 जीवन दर्शन
9.4 काव्य–शिल्प
 9.4.1 काव्य–रूप
 9.4.2 काव्य–भाषा और सर्जनात्मकता
 9.4.3 काव्य प्रतीक और काव्य बिंब
 9.4.4 लय और छंद
9.6 सारांश
9.7 शब्दावली
9.8 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर
9.9 उपयोगी पुस्तकें

9.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- छायावादोत्तर कविता की पृष्ठभूमि ने भवानी प्रसाद मिश्र की काव्य संवेदना से साक्षात्कार करा सकेंगी/सकेंगे;
- कवि–परिचय, रचनाकार–व्यक्तित्व के बुनियादी सरोकारों से परिचित होने के साथ उनकी कृतियों के विषय में बता सकेंगी/सकेंगे;
- कवि की काव्यानुभूति की बनावट में गांधी विचार–दर्शन की भूमिका से परिचित करा सकेंगी/सकेंगे;
- नयी कविता के अनास्थावादी तेवर से अलग हटकर आस्थावादी मूल्यों की खुली वकालत के कारणों को बता सकेंगी/सकेंगे;

- भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य–स्वभाव, काव्य–प्रेरणा, काव्य–दृष्टि और उद्देश्य का परिचय दे सकेंगी/सकेंगे और
- कवि की अभिव्यक्ति–सम्पदा के सहज–सौन्दर्य की मार्मिकता से आत्मीय संवाद कर सकेंगी/सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

कवि–जीवन के आरंभ से ही भवानी प्रसाद मिश्र छायावादी कविता की मूल दृष्टि और काव्य–शिल्प के मुहावरे के प्रति विद्रोही बनकर काव्य–सर्जना में प्रवृत्त हुए। उन्होंने अपनी कविता की स्वतंत्र राह स्वयं निर्मित की और किसी भी तरह की देशी–विदेशी काव्य प्रवृत्तियों के अनुकरण से दूर रहे। उनके कवि–मन का निर्माण वाल्मीकि–कालिदास, कबीर और सूर, भारतेन्दु और पं. रामनरेश त्रिपाठी की स्वच्छन्दता प्रिय दृष्टि ने किया। राष्ट्रीय जागरण ने उनकी सर्जनात्मकता में देश–प्रेम के संस्कारों को बलिष्ठ बनाया और मध्य प्रदेश की प्रकृति ने उनमें नया अनुराग पैदा किया। वे एक प्रकार से नर्मदा की तप–त्याग–धारा के परशुराम तेज वाले सन्त–कवि हैं। इस आधुनिक संत कवि को सत्य कहने और लिखने में ही जीवन की सार्थकता दिखाई देती है। वे किसी भी साहित्यिक वाद के भीतर बंधकर नहीं लिखते। दरअसल, पराधीनता उन्हें किसी तरह की स्वीकार न थी– न वाद की, न अंग्रेज की, न परायी भाषा की, न अभिव्यक्ति की, न पद–सत्ता की। वे सदैव स्थापित व्यवस्था के विरोध में रहे। दलितों–उपेक्षितों, दुर्भाग्य के मारे ग्रामीण बच्चों के लिए उन्होंने सदैव संघर्ष किया। फलस्वरूप उनकी कविता आत्माभिव्यक्ति के भीतर आत्मदान और आत्मप्रसार की कविता है। कहना न होगा उनमें इकबाल और निराला दोनों की अनुगूंज सुनाई देती है।

9.2 कवि परिचय

9.2.1 जीवन–परिचय

कविवर भवानी प्रसाद मिश्र का जन्म (29 मार्च 1913 ई.) टिगरिया जिला होशंगाबाद (म.प्र.) में हुआ। सीताराम मिश्र संस्कारवान व्यक्ति थे और हिंदी–संस्कृत, अंग्रेजी तीनों का ज्ञान रखते थे। रात दिन रामायण का पाठ करते थे और बालक भवानी प्रसाद को कविता सुनाते और याद कराते थे। भवानी प्रसाद की माँ गोमती देवी परोपकारी, वैष्णव संस्कारों की महिला थी। मातृ–संवेदनाओं और पिता के काव्य संस्कारों का प्रभाव भवानी प्रसाद के काम पर गहरा है। उनकी मानसिकता का गठन गाँव–नदी–पर्वत से हुआ। 'छोटी सी जगह में रहता था, छोटी–सी नदी नर्मदा के किनारे, छोटे से पहाड़ विध्यांचल के आंचल में साधारण लोगों के बीच। एकदम घटना विहीन अविचित्र मेरे जीवन की कथा है। साधारण मध्य वित्त के परिवार में पैदा हुआ, साधारण पढ़ा–लिखा और काम भी किए वे भी असाधारण से अछूते। मेरे आस–पास के तमाम लोगों की–सी सुविधाएं– असुविधाएं मेरी थी। नरसिंहपुर में रहे और पूरे देश को वहीं से पाया। सन् 1934–35 में बी.ए किया और माखनलाल चतुर्वेदी में भेंट की। चतुर्वेदी जी का प्रभाव ऐसा पड़ा कि लिखना राष्ट्रीय जागरण का पर्याय बन गया। माखनलाल ने इनका नाम रखा, 'बाल मोहन' पर अपने निर्णय से उस नाम से मुक्ति पाई। 'मैंने बहुत छोटी उम्र में लिखना शुरू कर दिया था और जो लिखना शुरू कर देता है वह समकालीन साहित्य को पढ़ता है। 'प्रभा' की

फाइलें पढ़ डाली थी और 'कर्मवीर' हमेशा पढ़ते थे। 'सरस्वती', 'चांद', 'सुधा', 'माधुरी' और 'विशाल भारत' के अध्येता थे।'

9.2.2 रचनाकार–व्यक्तित्व

छायावादोत्तर कविता में भवानी प्रसाद मिश्र का नाम अपनी अलग राह और अलग काव्य–खोज, भावचेतना के कारण एक दम विशिष्ट है। 'मुझ पर किन कवियों का प्रभाव पड़ा, यह भी एक प्रश्न है। किसी का नहीं। पुराने कवि मैंने कम पढ़े, नये कवि जो मैंने पढ़े मुझे जंचे नहीं। मैंने लिखना शुरू किया तब अगर श्री मैथिलीशरण गुप्त और सिया राम शरण गुप्त को छोड़ दें तो छायावादी कवियों की धूम थी। 'निराला', 'प्रसाद' और 'पन्त' फैशन में थे। मेरी कम्बख्ती (जिसे कहने में भी डर लगता है) ये तीनों ही बड़े कवि मुझे लकीरों में अच्छे लगते थे। किसी एक की भी एक पूरी कविता बहुत नहीं भा गई।' अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद के कवियों मे वर्डसवर्थ और ब्राडनिंग को खूब पढ़ा – इधर रवीन्द्रनाथ प्रिय कवि रहे। वाल्मीकि–कालिदास तथा भक्ति काल के सन्त कवियों में इनका मन रमा और यह प्रभाव इनके कवि कर्म पर साफ झांकता है। वर्ड्सवर्ड की एक बात उन्हें बहुत जँची कि 'कविता की भाषा यथासंभव बोलचाल की भाषा हो।' यह आदर्श उन्होंने अपने रचना–कर्म में जीवन भर पालन किया है कि –

> जिस तरह हम बोलते हैं उस तरह तू लिख,
> और उसके बाद भी हमसे बड़ा तू दिख।

मिश्र जी को सन् 1943 ई. में तीन साल की जेल हुई। इसी बीच उन्होंने बंगला सीखी तथा बंगला साहित्य के महत्वपूर्ण ग्रंथों का अध्ययन किया। किन्तु वे भारतेन्दु, मैथिलीशरण, माखन लाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन और पं. रामनरेश त्रिपाठी की परंपरा के रचनाकार रहे हैं। फलतः ईश्वर और आध्यात्म के चक्कर में कभी नहीं पड़े। जो मूर्त और प्रत्यक्ष मानव है वही उनके सृजन का लक्ष्य है। कविता में वही लिखा जो उनके काव्यानुभव का विषय रहा। झूठी काव्य–गप्प से सदैव दूर रहे। उनके व्यक्तित्व पर नर्मदा और तप–तेज के प्रतीक परशुराम की परंपरा का गहरा प्रभाव पड़ा। किसी भी वाद, दर्शन या टैकनीक के प्रति आकर्षण नहीं रहा। 'संकल्प यही रहा कि दर्शन में अद्वैत, वाद में गांधी और टैकनीक में सहज ही लक्ष्य मेरे बन जायें, यही कोशिश है।' भवानी भाई पत्रकारिता और कविता में गांधी–विचार दर्शन के जीवन भर श्रद्धावान व्याख्याता रहे। उन्होंने माखन लाल जी की एक बात गांठ बांध ली कि 'तुम्हारा आसान लिखना छूट न जाए, इसकी सावधानी रखना। किन्तु यह भी ध्यान रखना कि आसान लिखना ध्येय नहीं है। ध्येय है लिखना, मन की बात, भीतर की बात, भीतर से भीतर की बात, और वह इस तरह कि वह न तो सूत्रबद्ध हो न भाष्य। जा मन में न समा सके, उसे वाणी तक लाओ। किन्तु जुबांदराजी मत करो। कलम को जीभ मत बनने देना।' इस संकल्प ने ही ब्रिटिश साम्राज्यवाद पर चोट की और फ्रायड तथा मार्क्स के आंतक से मुक्त रखा। 'गांधी के प्रेम, सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह को हर कीमत पर काव्याभिव्यक्ति दी और देशभक्ति के आंदोलनों को निर्भय वाणी। गरीब, किसान–मजदूर जनता के लिए जीवन भर संघर्ष किया और आपातकाल (इमर्जेन्सी) में सरकार की कटु आलोचना की। सच बात यह है कि भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य–व्यक्तित्व एक 'खरे संत योद्धा' के काव्य–व्यक्तित्व का पर्याय रहा है। उनका निधन 20 फरवरी 1985 को नरसिंहपुर में हुआ।

9.2.3 कृतियाँ

मिश्र जी ने सन् 1930 ई. से काव्य–सृजन शुरू किया और तत्कालीन पत्र–पत्रिकाओं में खूब छपते रहे। कवि रूप में उनकी ख्याति 1940 ई. तक फैल गई पर एक साथ बहुत सी कविताएँ 'दूसरा सप्तक' (1951 ई. सं. अज्ञेय) में छपी जिनको पर्याप्त आदर मिला। प्रथम काव्य–संग्रह 'गीत फरोश' सन् 1956 ई. में प्रकाशित हो पाया। इस अकेले काव्य संकलन की कविताओं ने उनके कवि की धाक जमा दी। आधुनिक हिंदी कविता की विकास–यात्रा का यह संकलन एक ऐतिहासिक दस्तावेज है। गांधी–विचार दर्शन से ओतप्रोत पाँच सौ कविताओं का संकलन 'गांधी पंचशती' के नाम से आया। 'चकित है दुख', 'अंधेरी कविताएँ', 'बुनी हुई रस्सी', 'व्यक्तिगत', 'खुशबू के शिलालेख', 'परिवर्तन जिए', 'त्रिकाल संध्या', 'अनाथ तुम आते हो', 'इदं न मम', 'शरीर, कविता, फसलें और फूल', 'मान सरोवर दिन', 'सम्प्रति', 'तुकों के खेल','नीली रेखा तक' तथा 'तूस की आग' आदि अन्य प्रसिद्ध काव्य–संकलन – हैं। इन्होंने एक प्रबंध काव्य की रचना भी की है। 'कालजयी' नामक यह प्रबंध कृति अशोक की कथा पर आधारित होने से ऐतिहासिक प्रबंध काव्यों की श्रेणी में आती है। इसमें ऐतिहासिक कथा के माध्यम से कवि ने प्रेम–अहिंसा के मानवीय मूल्यों की स्थापना की है।

भवानी प्रसाद मिश्र का सम्पूर्ण काव्य–सृजन मानवीय मूल्यों की विश्व–दृष्टि का अक्षय भण्डार है। देश और काल की सीमाओं को अतिक्रान्त करते हुए वे प्रगतिशील चेतना के तेजस्वी रचनाकार है। 'कवि' शीर्षक कविता में उन्होंने कहा है 'कलम अपनी साथ/और मन की बात बिल्कुल ठीक कह एकाध/यह कि तेरी भर न हो तो कह/और बहते बने सादे ढंग से तो बह/' कहना न होगा कि अन्याय और अत्याचार के सक्रिय विरोध में खड़े इस कवि की वाणी में तलवार से ज्यादा पैनी धार है।

बोध प्रश्न– 1

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दें।

1. भवानी प्रसाद मिश्र के जीवन का पाँच पंक्तियों में परिचय दीजिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

2. भवानी प्रसाद मिश्र के रचनाकार–व्यक्तित्व की दो विशिष्टताओं का उल्लेख कीजिए।

   ....

   ....

   ....

3. सही√ गलत x पर निशान लगाइये।

   भवानी प्रसाद मिश्र के प्रबंध काव्य का नाम –

   i) गीत फरोश ( )

ii) कालजयी ( )

iii) नीली रेखा तक ( )

iv) तूस की आग ( )

4. भवानी प्रसाद मिश्र की रचनाओं की सृजन–दृष्टि पर तीन पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

9.3 काव्य संवेदना

9.3.1 काव्यानुभूति

मिश्र जी चिंतन को अनुभूति में फेंटकर प्रस्तुत करने में दक्ष हैं। नतीजा यह है कि उनकी आत्माभिव्यक्ति में भाव उष्मा के साथ आत्म–विस्तार और आत्म–परिष्कार के तत्व प्रधान रहते हैं। मूलतः उनकी काव्य संवेदना में गांधी–विचार दर्शन के मूलाधारों का विस्फोट है और यह विस्फोट गीतात्मक है। नयी कविता में वे एक मात्र ऐसे कवि है जिनकी काव्यानुभति में किसान, मजदूर, बच्चे और नारी इन सभी की समस्याओं का दर्द मूल संवेदना में जज्ब होकर सहजता से बोलता है। उन्होंने अपनी काव्यानुभूति का संस्कार स्वाधीनता आंदोलन की मुक्ति चेतना से किया है। अंग्रेज और अंग्रेजियत, पूँजीवाद और उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद और रूसी साम्यवाद सभी पर चोट की है। उनका कथन है 'मैंने अपनी कविता में प्रायः वही लिखा है जो मेरी ठीक पकड़ में आ गया है। दूर की कौड़ी लाने की महत्वाकांक्षा भी मैंने कभी नहीं की।' बहुत मामूली रोजमर्रा के सुख–दुःख मैंने इनमें कहे हैं जिनका एक भी शब्द किसी को समझाना नहीं पड़ता।'शब्द टप–टप टपकते हैं फूल से/सही हो जाते हैं मेरी भूल से'। लोकजीवन की खरी संवेदना ही काव्य का मूलाधार है। काव्यानुभूति में लोक–वेदना का यही संसार घुमड़ता रहता है जैसे –

तंग गलियों में कहीं बच्चे खड़े हैं
लाल है पर भाग पत्थर से अड़े हैं
धूल के हीरे नहीं अब धूल हैं ये
फूल जंगल के नहीं अब शूल है ये।

यह काव्यानुभूति उस व्यवस्था और सत्ता की विसंगतियों पर व्यंग्य करती है जिसमें बच्चे तक दरिद्रता में मर रहे हैं । उनका बचपन सिसक रहा है – 'हाय रे बचपन तलक सुख से न बीता, वाह रे, दरिद्र तूने खूब लूटा।'

उन्होंने झोपड़ी और महलों की लड़ाई को समझते हुए लिखा है कि यदि झोपड़ी मिटेगी तो महल भी नहीं बचेगा।

एक दिन होगी प्रलय भी
मत रहेगी झोपड़ी मिट जायेगा नीलम निलय भी।

पूँजीपतियों, मुनाफाखोरों, देशद्रोहियों के खून सने जबड़ों की उन्हें सच्ची पहचान है। इसलिए उनकी काव्यानुभूति का दर्द सच्चा है। व्यंग्य और वक्रोक्ति से कवि मन खौलता मिलता है –

आप सभ्य हैं क्योंकि धान से भरी आपकी कोठी
आप सभ्य है कि क्योंकि वक्त पर कटवा देते बोटी।

उनके गांधी–दर्शन की काव्यानुभूति में हर सत्य को निर्भयता से कहने की गजब की ताकत है। 'आपात काल' के दिनों में वे 'त्रिकाल सन्ध्या' लिखते हैं और सत्ता के क्रूर चरित्र को उधेड़कर रख देते हैं। नयी कविता में उनकी काव्यानुभूति का तेवर कबीरनुमा रहा है। बैनों के बान मारकर वे हर जोखिम झेलने की तैयारी करते हैं।

उनकी काव्यानुभूति में प्रकृति की लय है। भारतीय जीवन की सन्त–लय ने उनकी कविताओं में स्थान पाया है। 'गीत फरोश', 'सतपुड़ा के जंगल', 'सन्नाटा', 'शब्दों के तल्प पर', 'घर की याद', 'त्रिकाल सन्ध्या', 'नीली रेखा तक', 'तूस की आग' आदि उनकी ऐसी ही श्रेष्ठ कविताएं हैं। उनकी काव्य–यात्रा अंत तक गांधी जी के विचारों का काव्यानुवाद करती रही। हालांकि आजादी के बाद की निराशा, लूट का अंधेरा उनकी काव्यानुभूति में दर्द बनकर बना रहा है। किन्तु इस काव्यानुभूति में अस्तित्ववादी दर्शन की वह अनास्थावादी दृष्टि नहीं है जिससे नयी कविता के अधिकांश कवि समझौता किए रहे हैं। वे मानवीयता और अखंड आस्था के भारतीय कवि हैं। इसलिए उनकी काव्यानुभूति में भारतीय लोक जागरण की परंपरा बिजली–सी कौंध रही है। अहिंसा की प्रेम धारा का पवित्र जल इस काव्यानुभूति को सींच कर शक्ति देता रहा है। यहाँ कविता में नर्मदा का परशुराम तेज तपड़ता है और कविता का स्रोत सतपुड़ा की कठोर चट्टानों को फोड़कर उमड़ पड़ता है।

भवानी प्रसाद मिश्र भावाडम्बर, बौद्धिक दुरूहता और व्यक्तिवादी चिंतन के रचनाकार नहीं हैं। बृहत्तर मानव समाज से कटने वाली अनुभूति का उनके लिए कोई मूल्य नहीं है।

9.3.2 कविता की मूल्य दृष्टि

उनकी कविता का प्रधान मूल्य है मानव की मुक्ति, शोषण मुक्त सामाजिकता, गंवई संवेदना की भावभूमि का खरापन, सन्त–भाव की करुणा और गांधी–विचार दृष्टि की मूल्य चेतना। इन जीवन मूल्यों को उन्होंने जूझकर कमाया है। इन्हीं मूल्यों की रक्षा के लिए उन्होंने अंग्रेजों पर चोट की है और सत्ता के साँड़ों को काबू में करने वाली नकेल डालनी चाही है। जन के सम्बोधन और प्रश्नाकुलता इस काव्यात्मकता में बहुत है और यह इस बात का प्रमाण है कि वे सामाजिकता की व्यापक भूमि पर कविता को रचते हैं। उन्होंने बार–बार दुहराया है –

सच कहो कवि आत्मा से पूछकर
सच कहो कवि मन किसी का भय करो।

यहाँ 'आत्मा' शब्द से डरने की जरूरत नहीं है। भारतीय दर्शन का यह शब्द यहाँ अन्तर्मन के अर्थ में आया है–आत्मा के दार्शनिक चिंतन–प्रपंच को लेकर नहीं। उनकी कविताओं में गाँव की गरीबी और खेतिहर किसान की पीड़ा है। फिर भी कहा यही है –

सहो
और बेहतर बातों के लिए
रहो।

उनके काव्य के मूल्य, गांधी–विचार दर्शन में घुले खादी के मूल्य है। एक प्रकार से यह खादी की कविता है जिसमें एक संस्कृति का इतिहास बोलता है। वे भोले कवि हैं पर शंकर का क्रोध उनमें रंग दिखा देता है। इसलिए उनके काव्य के बोलों का असरदार हाशिया है –

और न जाने क्या–क्या बोला। पिछले साल भवानी भोला।

इस कविता के स्वाधीनता परक मूल्य दृष्टि और प्रेरणा–शक्ति पर माखन लाल चतुर्वेदी, रामनरेश त्रिपाठी और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' तीनों की छाप है। उन्होंने नए मानव की हर बात कही है पर ऐसे सांचे में ढालकर कि उसके भीतर छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नयी कविता का सांचा छोटा पड़ा है। फलतः कविताओं में उनका बल 'नयी' पर कम 'कविता' पर ज्यादा है। ये कहते रहे हैं–

अगर गा न पाये तो हल्ला करेंगे
इस हल्ले में मौत आ गई तो मरेंगे।

(गांधी पंचशती)

जन–जीवन का हर कोना वे छानते है, हर आंख के आंसू पर उनकी दृष्टि अटकी है और सत्ता की हर हरकत पर उनकी लेखनी तलवार की तरह चली है।

9.3.3 मानव और प्रकृति

इस कविता के सौन्दर्य संसार में मानव तथा प्रकृति दो नहीं है –दोनों में अद्वैत है। यही उनके चिंतन का काव्यात्मक अद्वैतवाद है। वे नदी की तरह बहना, फूल की तरह खिलना, धूप की तरह फैलना चाहते हैं। विन्ध्य पर्वत और नर्मदा के वन उनमें विस्तार पाए हुए हैं। मध्य प्रदेश की आदिम जातियाँ जिन वनों में रहती है उन सतपुड़ा के वनों में उनकी दृष्टि का प्रवेश है। फलतः जन–मन से एकाकार होकर ही इस कविता में शक्ति आई है –

वे ऐसा गाँव देखते रहे हैं –

गांव जिसमें झोपड़ी है घर नहीं है
झोपड़ी की फटकियाँ हैं दर नहीं है,
धूल उठती है, धुएं से दम घुटा है
मानवों के हाथ से मानव लुटा है।

पर इस कविता में जो मनुष्य परिभाषित हुआ है वह एकदम मस्त, निर्भय और श्रमी आदमी है।

भवानी भाई के काव्य में प्रकृति की संवेदना का विस्तार है। फूल–पत्ते, नदी, मैदान, पर्वत, लताएँ, जंगल, खेत, पशु–पक्षी यह सब मिल कर बनाते है उनका काव्य संसार। कालिदास का मन इस

कवि में नए ढंग से खुलता है। मेघ, बूंद, धूप सबके साथ उनका सौन्दर्य बोध तदाकार है। आधुनिक भाव–बोध के इस कवि के लिए यह एक आंतरिक जरूरत थी कि वह प्रकृति की मुक्तता में अपनी वैयक्तिक स्वाधीनता और सामाजिक स्वाधीनता की खोज करे। इस मुक्ताकांक्षी कवि के लिए प्रकृति की स्वच्छन्दता का आकर्षक इसलिए भी था कि वह रूढ़ियों को तोड़कर चैन से जीवन जी सके। इसलिए भवानी भाई ने अपने प्रकृति–प्रेम को देश प्रेम में एकाकार कर दिया है। इस प्रेम का आत्म प्रसाद देश में मनुष्य, नदी, पर्वत, निर्झर, सरोवर, फूल, पत्ते, लता गुल्म, पशु–पक्षी सभी तक है। भवानी प्रसाद मिश्र मानते हैं कि फूल हमारे वनस्पति जगत् की संवेदनात्मक पहचान है। प्रकृति सृजन के लिए पतझड़ के बाद नव पल्लवन करती है। पल्लवों में फूल और फल आते हैं। मूल बात यह है कि हमारी सांस्कृतिक अवधारणा में पेड़–पौंधे कई अर्थों में मनुष्य के समान है। पुराने पत्तों का झर जाना जीर्ण संस्कारों से मुक्ति पाना है। पुनः नये पत्तों का आना नए जीवन का उदित होना है। पूजा में नए पत्तों और फूलों का महत्व इसीलिए अधिक है कि हम प्रकृति सुन्दरी के मनोभाव को व्यक्त करते हैं। केवल फूल ही चढ़ा दें तो पूरी पूजा सम्पन्न हो जाती है। आगम परंपरा मानती है कि फूल आकाश तत्व है– फूल चढ़ाकर हम अपने लघु अस्तित्व को किसी महत्तर के प्रति अर्पित कर देते हैं। भवानी भाई अपनी कविता में इस प्रकृति सन्दर्भ को जगह–जगह अभिव्यक्ति देते हैं –

> फूल लाया हूँ कमल के क्या करूँ इनका
> पसारें आप आंचल छोड़ दूं हो जाए जी हलका।

भारतीय कविता का प्रसिद्ध उपमान है – कमल का फूल। यहाँ तक कि हमारे देवी–देवता कमल नयन, राजीव लोचन, कमलासन, करकमल और पदकमल हैं। उनके मुख में कमल की गंध हैं, आँखों में कमल का रंग और आकार, हाथ में कमल की जागरूकता और चरणों में कमल की गति है। कमल में भक्तियोग, ज्ञान योग, कर्मयोग तीनों का एकांतवास है। साधना से साधक कमल को हृदय में खिलाता है। पार्वती के हाथ में लीला कमल है। पूजा में घट जाने पर कमल ही राम का दक्षिण नयन है। विष्णु की दाहिनी आँख सूर्य है। कमल सूर्य से खिलता है। मूल बात यह है कि हमारी जातीय चेतना कमल से पड़ी है। यहां तक कि प्रत्येक ऋतु का एक अलग फूल है, शरद का कमल है वसन्त का कुरबक। इन सभी फूल प्रतीकों में हमारी सौन्दर्य बोध की अवधारणा के बीच–भाव मौजूद है। स्वाधीनता आंदोलन के दिनों में फूल के साथ उत्सर्ग और अर्पण का देशभक्ति भाव जुड़ गया। भारतेन्दु, श्रीधर पाठक, माखनलाल चतुर्वेदी की इसी भाव परंपरा में भवानी प्रसाद मिश्र के प्रकृति प्रेम को देखा जा सकता है। विशेष बात यह है कि मिश्र जी की कविता में कालिदास की तरह जल बहुत है, जल के प्रतीक अनेक है। यहाँ नर्मदा का जल भीतर के तप का प्रवाह है।

नदी का भारतीय संस्कृति में गुणगान बहुत है। संस्कृति में इसका महत्व क्यों है? कारण, नदी हमारी पूरी जीवन प्रणाली रही है। नदियां ही नाड़ी है जो भौगोलिक एकता को बनाए रखती हैं। नदियों का जल हमारी समष्टि चेतना का अविरल प्रवाह है। फिर भवानी भाई के काव्य की प्रेरणा की नदी नर्मदा है। नर्मदा क्वारी नदी है, इसलिए बहुत प्रबल है और अनियन्त्रित भी। फिर यह गंगा से विपरीत दिशा में बहती है। नर्मदा, क्रोध, तप और टकराव की धारा है। नर्मदा का इतिहास परशुराम से जुड़ा है। इसी नदी की चोट से पत्थर शंकर हो गए। इसके रोड़ों से ओंकारेश्वर बनाए गए। यदि हम नर्मदा की उपेक्षा करेंगे तो हमारी प्रवाह धर्मी संस्कृति के मूल्य चुक जायेंगे हमारा सांस्कृतिक मन बीमार और विकृत हो जाएगा। इसलिए भवानी प्रसाद के

काव्य में आने वाली नदी नर्मदा का अर्थ विस्तृत है और गहरा भी। नर्मदा नदी के इस भावार्थ की उपेक्षा करने पर हम भवानी प्रसाद मिश्र के काव्यार्थ को नहीं समझ सकते हैं। क्योंकि उनकी मानसिकता का निर्माण इसी नदी की भावभूमि ने किया है।

भवानी प्रसाद मिश्र का प्रकृति के प्रति विशेष लगाव रखना व्यक्तिगत स्वच्छन्दता की आकांक्षा का तो प्रतीक है ही वह मानव की प्रकृत स्वाधीनता का भी संदेश रूप है। मिश्र जी का प्रकृति सौन्दर्य की महिमा का गान करना, प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता मानना वाल्मीकि–कालिदास की परंपरा का प्रभाव भी है। स्वयं रवीन्द्रनाथ को नया आलोक–प्रकृति से ही मिला था। भवानी भाई पर रवीन्द्रनाथ की 'निर्झर स्वप्न भंग' कविता का असर दूर तक मिलता है, रवीन्द्र उनके प्रिय कवि थे। निराला का 'बादल राग', केदारनाथ अग्रवाल की कविता 'घन गरजे जन गरजे' की धमक भी भवानी की काव्य–चेतना पर सीधी छाप छोड़ती रही है। विन्ध्यांचल, सतपुड़ा का परिवेश उनमें रचा पचा है और इसे उनका काव्य विविध रूपों में चित्रित करता रहा है।

9.3.4 जन जीवन के संघर्षों की वाणी

मूलतः भवानी प्रसाद मिश्र गांव की संवेदना के कवि हैं। जन जीवन की विषमताओं, विडम्बनाओं और विसंगतियों को वे वाणी देते हैं। उनके गांधीवादी स्वर में साम्यवादी आक्रोश शुरू से ही रहा है। यदि श्रमिक के श्रम को हड़पने का यह लूटतन्त्र चलता रहा तो जनक्रांति हो जायेगी। 'दूसरा सप्तक' में 'प्रलय' कविता इसी मनोभूमिका को व्यक्त करती है –

> एक दिन होगी प्रलय भी
> मत रहेगी झोपड़ी,
> मिट जायेंगे, नीलम निलय भी।

यदि श्रम का सही बंटवारा न हुआ तो हिमालय की बर्फ से आग फूट पड़ेगी। बर्फीली सतह अन्यायी का खून पीकर लाल हो जाएगी और–

> काल होगी तारिणी गंगा
> तरणिजा व्याल होगी,
> और शिव होंगे न शंकर
> कंठगन जय माल होगी
> कर न पायेगा हमें आश्वस्त
> जननी का अभय भी।
> एक दिन होगी प्रलय भी।

भारत में आजादी के सूर्य के उदित होने के बाद भी गाँव में अंधेरा है। छोटे–बच्चे अभाव और भूख, अशिक्षा और शोषण में बर्वाद हो रहे हैं। खेतिहर किसान–मजदूर फसलों को उगाकर भी भूखा है। थोड़े से सफेद पोश लोग रंग, भाषा, नस्ल, जाति और व्यवस्था के साम्राज्यवादी हितों को पालकर भोग रहे हैं। शोषण के साँप की जीभ बढ़ती ही जाती है – उसका कोई अन्त नहीं है। इस गरीब जनता की व्यथा के लिए मिश्र जी की कविता में व्याप्त मानववाद एक मूल्यवान जीवन दृष्टि है। भारत के आपातकाल के दिनों में वे 'त्रिकाल सन्ध्या' की कविताएँ लिखते हैं

और सत्ता के जुल्म–जोर को खुली चुनौती देते हैं। सत्ता हथिया कर जो सभ्यता–संस्कृति और शांति का नारा लगाता है, जनता को गुमराह करता है – यह कविता उसके विरोध में खड़ी होती है। माखनलाल से भवानी प्रसाद ने यही सीखा है कि वे देश और जनता के लिए सत्ता को खुली चुनौती देते हैं और उनकी कविता अन्याय के प्रति एक तेज ललकार बन जाती है। उनकी कविता में झूठी करुणा का नाटक नहीं है उसमें कवि का युग संघर्ष बोलता है।

9.3.5 विसंगति और विडम्बना

भवानी भाई की सर्जनात्मकता में विद्यमान विसंगति और विडम्बना को लेकर नयी कविता के कवि आलोचक अज्ञेय जी ने लिखा है कि वे गंभीर से गंभीर बात को निहायत सरल, सादा, स्पष्ट और गंभीर ढंग से कहने की कला में दक्ष हैं। गंभीर विषय को वस्तु बनाते समय उन्हें प्रयास नहीं करना पड़ता। जैसे डाली पर फूल खिलता है वैसी ही उनकी कविता प्रकृत भाव–भूमि से उपजती है। व्यंग्य और वक्रोक्ति की पैनी धार का भरपूर वार भी वे काफी सधे हाथों से करते है। उनकी कला का यह आदर्श 'गीत फरोश' कविता में देखा जा सकता है। इस कविता को लेकर अज्ञेय जी ने लिखा 'मैं इस बात को कुछ दूसरे ढंग से कहूँ? नाटकीयता तो खैर इसमें है, पर असल विशेषता यह है कि इसकी गंभीर बातों को हल्के ढंग से कहा गया है। नयी कविता में यह भी है और इससे ठीक उल्टा भी है, बहुत हल्की बात को गंभीरता से कहना या कम से कम चमत्कारपूर्वक कहना या कह लीजिए छोटी बात में से चमत्कार खोज लेना। बल्कि उसका एक सिद्धांत यह हो सकता है कि छोटी बात कोई है ही नहीं। उसे देखने में ही सारा चमत्कार निहित है।' (आधुनिक साहित्य : एक परिदृश्य, पृ. 152) विषय को प्रस्तुत करने की अदा तो 'गीत फरोश' में है पर कविता पूरी तरह विषयवस्तु पर ही केन्द्रित है रूप का चमत्कारी रूझान उसमें नहीं है। इस बात को 'कविता के नए प्रतिमान' (प. 165) में नामवर सिंह ने स्वीकार करते हुए कहा है कि 'इसका कवित्व एक गंभीर बात को निहायत अगंभीरढंग से कहने में है और यह अगंभीरता कविता के स्वर (टोन) में है।' गंभीरता के आडम्बर में भवानी भाई काव्यात्मकता को गायब नहीं करते। ज्ञान उनके लिए बोझ नहीं है, सहज प्राप्त सम्प्रेषण है। नई कविता में विसंगति–विडम्बना के दृश्य दिखाने के लिए सर्वेश्वर, रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा, विजयदेव नारायण साही, शमशेर और केदारनाथ सिंह इस तकनीक का प्रायः प्रयोग करते रहे हैं और इन सभी को इन प्रयोगों में सफलता मिली है। नितांत भिन्न और असम्बद्ध समझी जाने वाली वस्तुओं का ये कवि सफल ढंग से संयोजन कर देते हैं और एक नया अर्थ–सूर्य निकल पड़ता है। हिंदी के ये कवि क्रीड़ा–कौशल का खुब और अनेक रूपों मुद्राओं, स्थितियों, प्रकरणों, मिथकों, में उपयोग कर लेते हैं। पर इन सभी में सामंजस्य से ज्यादा द्वंद्व है और तनाव का भीतरी परिवेश। इसलिए यह कविता एक नयी मनः स्थिति का जटिल बिंब है – एक नए राग संबंध का नया उद्घाटन। किन्तु भवानी प्रसाद की ईमानदारी यह है कि वे दूर की कौड़ी लाने के लिए नहीं भटकते। उन पर पश्चिम का ऋण नहीं है और वे अस्तित्वादी अनुभूति को पास नहीं फटकने देते। उनकी अनुभूति की प्रामाणिकता भारतीय परंपरा के मूल स्रोतों से जुड़कर ही सिद्धि पाती है।

9.3.6 जीवन दर्शन

वास्तव में मिश्र जी का जीवन दर्शन गांधी–विचार दर्शन पर केन्द्रित है। जीवन के छिछले–हल्के विकृत बाह्य भौतिकवादी मूल्य उनको कविदृष्टि को परितोष नहीं दे पाते। गांधी पर लिखीं अपनी

अनेक कविताओं में उन्होंने साम्यवादी मित्रों को संबोधित करते हुए कहा है कि गांधी–विचार दर्शन को प्रतिगामी दृष्टि घोषित करना अपनी सांस्कृतिक परंपरा से ही मुँह फेर लेना है। कारण, गांधी–विचार दर्शन में हमारी सन्त–परंपरा कबीर, नानक, रैदास, तुलसी का विचार प्रदीप्त है। हमारे स्वाधीनता संग्राम के अन्तिम दौर में भी यही सिद्ध किया है कि गांधी ही भारत की गरीब जनता के सच्चे जन नायक थे और उन्होंने एक खास ढंग से जनता को संगठित करके ब्रिटिश साम्राज्यवाद के पैर उखाड़ दिए। गांधी ने जाति, धर्म, सम्प्रदाय, रंग, वर्ग, वर्ण आदि से ऊपर उठकर जन आकांक्षाओं को साकार किया और हमारे इतिहास की दिशा बदल दी। उन्होंने सिद्ध किया कि अहिंसा, प्रेम और सत्याग्रह में जो ताकत है उसके सामने हिंसा, तोप, तलवार, बम की शक्ति तुच्छ है। गांधी आधुनिक भारत की मुक्ति और लोकमंगल की सिद्धि हैं। हमारा दुर्भाग्य यह रहा है कि हमने अपनी हर चीज को तुच्छ मानकर पश्चिम का मुंह ताका है और अपनी सभी समस्याओं का हल पश्चिम से मांगा हैं। पर पश्चिम हमारी समस्याओं का हल नहीं दे सकता। क्योंकि हमारी सामाजिक–सांस्कृतिक परंपराएँ पश्चिम से भिन्न है। अपने इतिहास के हाशिए में ही हम अपनी समस्याएं हल कर सकते हैं। मिश्र जी ने बराबर कहा है –

> लेकर समूची मानवता की परम्परा में
> अब तक के सबसे सीधे–सादे निर्भय और स्नेही आदमी
> गांधी का नाम।

उनका प्रबंध काव्य 'कालजयी' अशोक की ऐतिहासिक कथा के माध्यम से गांधी–विचार दर्शन की महत्व–प्रतिष्ठा करता है। सच बात यह है कि नयी कविता की मध्यवर्ती अन्तर्धारा में गांधी विचार प्रवाह से जो काव्यात्मक तेज उत्पन्न हुआ है उसकी सबसे अधिक विश्वसनीय अभिव्यक्ति मिश्र जी के काव्य में हुई है। गांधी विचार–चेतना के वे नयी कविता में प्रतिनिधि कवि हैं।

बोध प्रश्न –2

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दें।

1. भवानी प्रसाद मिश्र की काव्यानुभूति पर विचार कीजिए। अपना उत्तर आठ पंक्तियों में दीजिए।

   ....

   ....

   ....

2. भवानी प्रसाद मिश्र की कविता की मूल्य–दृष्टि की चर्चा तीन पंक्तियों में कीजिए।

   ....

   ....

   ....

3. मिश्र जी के काव्य को ध्यान में रखते हुए मानव एवं प्रकृति के रिश्ते पर विचार कीजिए।

   ....

   ....

   ....

4. भवानी प्रसाद मिश्र का कवि जन–जीवन के संघर्षों को किस रूप में व्यक्त करता है? चार पंक्तियों में लिखिए।

....
....
....
....

5. भवानी प्रसाद मिश्र की जीवन–दृष्टि पर सही √ गलत x का निशान लगाकर बताइये कि किस विचारधारा का प्रभाव है?

1) समाजवाद ( )
2) मार्क्सवाद ( )
3) गांधी विचार दर्शन ( )
4) अस्तित्ववाद ( )

9.4 काव्य–शिल्प

भवानी प्रसाद मिश्र को चमत्कृत करने वाले कृत्रिम काव्य–शिल्प का मोह नहीं है। उनकी नैसर्गिक प्रतिभा में सर्जनात्मकता सहज–स्वच्छ रूप में निखार पाती है। उनके काव्य का मुहावरा किसी भी पूर्ववर्ती या समकालीन कवि का न तो अनुकरण है न मेल खाता है। उन्होंने कविता को आम आदमी का संवाद बनाया है, उसमें बोली की लय का संगीतात्मक राग बजता है। उनके कहने की अदा एकदम मौलिक, अद्वितीय और सहज स्फूर्त है। उनके 'अंदाजे बयां और' में व्यंग्य और कथन भंगिमा की विचित्रता का विशेष महत्व है और उनकी काव्य शैली नितांत उनकी है जिसे एक काव्य पंक्ति से पहचाना जा सकता है – वे लीक पर कभी नहीं चलते। यथा –

नये ठाठ से नई राह पर कदम धर दिया है
खाहमख्वाह टहलना हमने बंद कर दिया है।

सन्नाटा, गिरगिट, साँप, खण्डहर, पहाड़, मैंदान सभी का अंतरंग स्पर्श वे कर सकते हैं। वे 'सन्नाटा' और 'खंडहर' पर भी मजे से कविता लिख सकते हैं –

मैं सन्नाटा हूँ, फिर भी बोल रहा हूँ।
मैं शांत बहुत हूँ फिर भी डोल रहा हूँ।

सपाट बयानी को कविता बना देना चुनौती होता है, पर भवानी भाई उसे कविता बना देने में सक्षम रहे हैं। 'सतपुड़ा के जंगल' कविता में उनकी यही वर्णन शक्ति काम करती है, –

उतर कर बहते अनेकों, कल कथा कहते अनेकों,
नदी, निर्झर और नाले, इन वनों ने गोद पाले।

लाख पछी सौ हिरन दल चाँद के कितने किरन दल
झूमते वन फूल फलियाँ, खिल रही अज्ञात कलिया।

इस काव्य शिल्प की सपाट बयानी में प्रयोग के स्तर पर विशेष बात यह है कि कवि भाव–भूमि पर प्रकृत–चित्रण, लोक–गीतों का प्रयोग और प्रचलित लोक–धुनों की ओर विशेष झुकाव रखता है। यह उसकी महत्वपूर्ण प्रवृत्तिगत उपलब्धि भी कही जा सकती है, उदाहरणार्थ –

पीके फूटे आज प्यार से पानी बरसा री।
हरियाली छा गई, हमारे सावन सरसा री।
फर–फर उड़ी फुहार अलक हल मोती छाये री।
खड़ी खेत के बीच किसानिन कजरी गाए री।
झर झर झरना झरे, आज मन प्राण सिहाये री।
कौन जन्म के पुण्य कि ऐसे शुभ दिन आए री।

(मंगल वर्षा)

लोकमन की भावुक संवेदना से कविता में रचने वाला उनका शिल्प ऐसा है कि उसे आसानी से किसी 'वाद' के चौखटे में फिटकर पाना मुश्किल काम है। उन्होंने लगातार अपने युग संघर्ष की बात कही है पर सांचों को तोड़कर ही लिखा है।

9.4.1 काव्य–रूप

प्रबंध और मुक्तक दोनों काव्य रूपों के प्रचलित साँचे को तोड़कर उन्होंने अपना नया–काव्य साँचा निर्मित किया है। इसमें लोक शैली के गायन और संवाद के रूप मिलते हैं। सहज बयानी में वे उर्दू की कोई भी शैली उठा सकते हैं उनकी रचना बातचीत की लय में बन जाती है –

दर्द जब घिरे बहाना करो
नाना ना, ना ना ना ना करो
हँसों खेलो, मस्ती के संग
दर्द को लगे कि यह क्या ढंग?
दर्द भीतर हैरान रहे
ओठ पर अपने गान रहे

भवानी लोक गीतों के रूप में सामूहिक प्रार्थनाएँ लिखते हैं। स्वाधीनता आंदोलन की निर्भय भाव भरी प्रभात फेरिया गाते हैं –

अगर गा न पाये तो हल्ला करेंगे
इस हल्ले में मौत आ गई तो मरेंगे।

लोक गीत और प्रगीत दोनों ही भवानी भाई की कलम से नया संस्कार पा कर, मंजते और चमक उठते हैं। उनकी कविताएँ माली की कैंची से काटकर नहीं संवारी गई हैं – न वे कटे–छटे कला गीत हैं। वन–पर्वत पहाड़ खण्डहर, नदी की कछारों में अपने आप उगने वाले पेड़–पौधों

लताओं की भांति वे जन्में हैं –वन्य–सौन्दर्य की अकृत्रिम आभा ही इन गीतों का राग रंग हैं। 'गीत फरोश', 'त्रिकाल सन्ध्या', 'तूस की आग', 'नीली रेखा तक' जैसे संग्रहों में ऐसे अनेक गीत हैं।

नयी कविता में कथात्मक प्रबंध को तोड़कर लम्बी कविता लिखने का चलन हुआ। भवानी प्रसाद मिश्र ने 'शब्दों के तल्प पर', 'सतपुड़ा के जंगल', 'नीली रेखा तक', 'जिंदगी की धारा में', 'जलवा चीजों का' जैसी लम्बी विचार कविताएँ लिखीं हैं। मूलतः यह कविताएँ नाटकीय एकालाप हैं – जिनमें संरचनात्मक अन्विति की अन्तर्योजना है।

छोटे–छोटे भाव–गीत लिखने में भवानी भाई का मन बहुत रमता है। उन्हें तनकर कहने में दिलचस्पी रहती है–

सहो
और बेहतर बातों के लिए
रहो।

उनका एक मात्र प्रबंध काव्य है – 'कालजयी'। इसे अशोक की कथा पर आधारित ऐतिहासिक काव्य या खण्ड काव्य भी कहा जा सकता है। किन्तु इसमें पुराने प्रबंध की क्रमबद्ध कड़ियाँ तोड़ दी गई हैं। नतीजा यह हुआ है कि इसे भी परंपरागत प्रबंधकाव्य नहीं कहा जा सकता है।

कवि की मूल प्रतिज्ञा यह रही है कि वह काव्यरूपों को लेकर लकीर का फकीर नहीं बनना चाहता। फलतः वह अनेक प्रकार के लोक–रूपों और लयों से काव्य का ठाठ खड़ा करता है।

9.4.2 काव्य–भाषा और सर्जनात्मकता

अज्ञेय जी का यह कथन भवानी प्रसाद मिश्र की कविता पर एकदम खरा सिद्ध होता है कि 'काव्य सबसे पहले शब्द है और सबसे अन्त में भी यही बात बच जाती है कि काव्य शब्द है। सारे कवि धर्म इसी परिभाषा से निःसृत होते हैं। शब्द का ज्ञान – शब्द की अर्थवत्ता की सही पकड़ ही कृतिकार को कृती बनाता है। ध्वनि, लय, छंद आदि के सभी प्रश्न इसी में से निकलते हैं और इसी में विलय होते हैं। इतना ही नहीं सारे सामाजिक संदर्भ भी यहीं से निकलते हैं।' ('सीढ़ियों पर धूप' की भूमिका) ध्यान देने की बात है कि भवानी प्रसाद मिश्र ने शब्द – साधना को हर कीमत पर बनाये रखा है – उनकी प्रतिज्ञा रही है –

शब्दों का सही उपयोग योग है
और कल्याणकारी है योग की तरह
शब्द का मनमाना उपयोग भोग है
और विनाशकारी है भोग की तरह।

कहना न होगा कि शब्द की आत्मा और ध्वनि की सही पकड़ को लेकर ही भवानी ने सृजन कर्म किया है। उनके शब्दों ने अपनी ताकत से 'नाराज अंग्रेज' पर चोट की है और धूप–पानी–तूफान को आराम से झेला है–

वाणी को बुनने में
कंकर के चुनने में
x x x
केवल स्वभाव है
चुनने का चाव है।

मिश्र जी के काव्य कथन उनकी काव्य–भाषा की विशेषताएँ स्वतः कर देते हैं।

(1) अभी बैन
अभी बान
अभी बानों के सिलसिले

(2) याने मैं और मेरे शब्द
अलग–अलग नहीं है,
एक हैं।
मैं सिर्फ उन्हें बरतूँ नहीं
उन्हें जिऊँ –

(3) कलम अपनी साथ
और मन की बात बिल्कुल ठीक कह एकाध
जिस तरह हम बोलते हैं, उस तरह, तू लिख।
और इसके बाद भी हम से बड़ा तू दिख।
चीज़ ऐसी दे कि जिसका स्वाद सिर चढ़ जाए
बीज ऐसा बो कि जिसकी बेल बन बढ़ जाए।
फल लगें ऐसे कि सुख रस, सार और समर्थ
प्राण संचारी कि शोभा भर न जिसका अर्थ।

(4) सवाल यह है कि जो आग छिपी है,
शब्दों में उसे हम इस अंधेरी रात में
सुलगा सकते हैं कि नहीं।

भवानी प्रसाद मिश्र शब्दों की कुटिया में ऐसे समाधिस्थ रहे हैं कि उनकी चार दशकों की रचना यात्रा ने शब्दों में भावों की लपट उठा दी है। उनकी काव्य–भाषा में एक ऐसी सर्जनशीलता उत्पन्न हुई है कि वह शब्द–ब्रह्म की भारतीय अवधारणा को साकार करती है। उनकी काव्य–भाषा सबसे पहले एक आत्मीय संवाद है, बातचीत का भरासेमंद तरीका है, एक ऐसी शैली है जिसका लहजा केवल उनका है। 'बुनी हुई रस्सी' (1971 ई.) की भूमिका में उन्होंने लिखा है 'लिखने में आविष्कार मेरा बोलना है। मैं जो लिखता हूँ, उसे जब बोलकर देखता है और बोली उसमें बजती नहीं है तो मैं पंक्तियों को हिलाता डुलाता हूँ। बोलचाल की हिंदी ही मेरी ताकत है।' वास्तविकता यह है कि बोलचाल की इस ताकत का वे पूरी कवि शक्ति से उपयोग करते हैं। उनकी भाव मुद्रा कभी सम्बोधन की है, कभी प्रश्नाकुलता की है, कभी बच्चे सी भोली सहजता भरी है कभी व्यंग्य की चुटकी है, वक्रोक्ति की चोट है। कभी मजाक में भी गहरी अर्थध्वनि की मार है। यह काव्य–भाषा गद्यभाषा के एकदम निकट है 'जी हाँ! हुजूर', 'यानि कि',

'देखो', 'बोली, 'करो', 'चाहिए' जैसे प्रयोगों की कविता के बीच में सीधी उपस्थिति है। भाषा में अमूर्त को मूर्त करने की सृजन शक्ति है। नाटकीयता, सपाटबयानी, कथन का बांकपन और एक व्यापक आत्मीयता से यह काव्य–भाषा निर्मित है। उनके वाक्य कभी शेर की अदा में पूँछ उठाकर चलते हैं, कभी हिरन सी छलांग मारते हैं, कभी बिल्ली की भाँति चुपके–चुपके सधे पावों शिकार पकड़ते हैं, कभी नर्मदा की धार की तरह गति पाते हैं, कभी कमल की तरह खिल जाते हैं। इसलिए उनकी कविताएँ पढ़ने से ज्यादा सुनने–गाने में मजा देती है। बोलचाल की भाषा में गहन–गंभीर बात कह जाना उनका काव्य–भाषा की प्रमुख विशेषता है। छायावाद के कवियों के पास भाषा का यह सहज संसार न था पर प्रगतिवाद के पास सहजता के नाम पर एक ईमानदार संकल्प था। इसी सहज जनभाषा की लोकमय धारा को भवानी प्रसाद मिश्र ने आगे बढ़ाया है। उनकी तथा केदारनाथ अग्रवाल की काव्य–भाषा में एक अद्‌भुत साम्य है। दोनों बोलचाल की लोकभाषा से कविता को दुहते हैं। चूंकि दोनों का अनुभव स्पष्ट है फलतः दोनों की भाषा में अस्पष्टता, क्लिष्टता तथा उलझावन ही है। फिर भवानी की काव्य–भाषा में शब्दों की नर्मदा प्रवाहित है। तत्सम तद्‌भव, देशज सभी प्रकार के शब्द रगड़ खाकर उनकी काव्यात्मकता में चमक उठते हैं। उनकी अर्थदीप्ति में अभिधा का मनोरम जगत है और लक्षणा व्यंजना का चमत्कार भी। कभी विक्षोभ–विद्रोह और प्रहार की भाषा है तो कभी भाषा की धूप–चाँदनी का प्यार भरा दुलार है। घोषित तौर पर उनकी कविता जनसामान्य की व्यथा को वाणी देती है, और उसी की भाषा में वाणी देती है। उनकी कथनी–करनी एक है।

यह काव्य–भाषा अपनी काव्य संवेदना में हृदयस्पर्शी एवं गीतात्मक है उसमें तुक और लय का मोहक जादू है और अप्रचलित, जटिल–दार्शनिक संकल्पना वाले शब्दों का निषेध है। बिना कोश की सहायता से यह भाषा समझ में आती है। इस काव्य–भाषा की सम्प्रेषणीयता को हिंदी के सभी आलोचकों ने एक मत से सराहा है। सार–संक्षेप यह कि उनकी भाषा की सपाट बयानी कविता में विशेष स्वाद देती है और मिठास का स्वर पाठकों के प्राणों में प्यार का उद्वेलन भर देता है।

9.4.3 काव्य प्रतीक और काव्य बिंब

छायावादोत्तर काल में राजनीतिक–सामाजिक परिवेश के बदलाव से कविता के भीतरी और बाहरी ढांचे में भारी परिवर्तन हुआ है। भवानी प्रसाद मिश्र ने अपने देश और काल की इस चेतना को बातचीत की लय से पकड़ा है। इस बातचीत की लय का आत्मीय संवाद ही उनकी अभिव्यक्ति की खोज है। इसकी खोज की ताकत से उन्होंने भाषा की गठन, उसकी प्रतीक योजना को बदला है। इन प्रतीकों ने गुस्सा, खीझ, भय, आतंक, संतुलन, विसंगति, विद्रूपता और अवसाद आदि अमूर्त भावों को मूर्त करने का प्रयास किया है। प्रायः मिश्र जी ने प्रकृति के प्रतीकों से अपना अभिप्रेत अर्थ स्पष्ट किया है। उनके प्रिय प्रतीकों में कमल, नर्मदा, जंगल, शेर–चीता, बादल, कोकिल, वसंत, फूल–पौधे, बच्चे, खेतिहर किसान हैं। ऐतिहासिक व्यक्तियों में वे अशोक, गांधी को बार–बार मानवता का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रतीक के अर्थ में लाते हैं। झंडा, खादी, चरखा, चन्दन, आकाश आदि सत्याग्रह–युग के प्रतीक बार–बार आए हैं –

हो गया झंडा हमारा तय
हमें कोई अब नहीं है भय।

कविता में तिरंगा–झंडा पूरी शक्ति एवं मर्यादा से आता है, पर नदी के प्रतीक सांस्कृतिक परंपरा के प्रतीक बनकर आते है। इन प्राकृतिक, ऐतिहासिक, पौराणिक और राष्ट्रीय आंदोलन के प्रतीकों ने उनकी काव्य–भाषा में अर्थध्वनि की गहनता, गरिमा और उदात्तता पैदा की है।

इस सृजन में काव्यबिंब डाल पर फूल की तरह सजहता से खिलते हैं, पर उनके प्रति भवानी के कवि का कोई अतिरिक्त मोह नहीं है। वे सबसे ज्यादा ध्यान बिंब पर केन्द्रित न करके भाव के पारदर्शी, सम्प्रेषण व्यापार पर देते हैं। अपने पाठक से हृदय संवाद करते हुए वे छायावादियों की भाँति चित्र मोह में नहीं पड़ते। अनायास ही वे सन्नाटा का बिंब ला सकते हैं और नींद में ऊँघते सतपुड़ा के जंगल, नर्मदा के गति बिंब भी। आजादी के बाद के मोह–भंग को वे शब्द बिंबों में आंक सकते हैं जैसे –

1) बन्द गलियों में कहीं बच्चे खड़े हैं।
2) हाय रे, बचपन तलक सुख से न बीता।
3) जी, लोगों ने तो बेच दिए ईमान।
4) फूल लाया हूँ कमल के क्या करूँ इनका।
5) आप सभ्य हैं क्योंकि धान से भरी आप की कोठी।
6) मैं असभ्य हूँ क्योंकि चीर कर धरती धान उगाता।

इन बिंबों में समय और समाज की व्यथा–कथा का पूरा संदर्भ बोल रहा है। बिखरे बिंबों की एक माला उनकी कविता में रहती है इस दृष्टि से 'गीत फरोश', 'सन्नाटा', 'प्रलय', 'सतपुड़ा के जंगल', 'मंगल वर्षा' जैसी कविताएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। हमारी ऐन्द्रिय संवेदना को अपने मर्म से पकड़ने वाली कविताएं उन्होंने अधिक लिखी हैं यथा–

बूंद टपकी एक नभ से
किसी ने झुक कर झरोखे से
कि जैसे हँस दिया हो
हँस रही सी आँख ने जैसे
किसी को कस दिया हो,

अनुभव और अनुभूति के सरल–तरल बिंब उनकी कविता की शक्ति है। ग्रामीण संवेदना के ताजे बिंब अर्थदीप्ति की गति से भरे हैं। अमूर्त अगोचर और अलौकिक अनुभूति की बात वे कम करते हैं, वे मूर्त जीवन–जगत के व्यापार को काव्यात्मक बिंब में उजागर करते हैं। पर उनकी कविता बिंब का पर्याय नहीं है, सपाट बयानी में भी वे अपनी बात खुलकर कह लेते हैं। बोलचाल की लय शक्ति के कारण उनकी कविताएँ जनता में प्रसिद्ध रही हैं।

9.4.4 लय और छंद

प्रायः भवानी प्रसाद मिश्र ने तुकांत छंद में रचनाएँ की हैं, पर मुक्त छंद का अभ्यास भी उन्हें अच्छा है। उनके छंद, भाव को आकार देते हैं, वाक्य को तरासते हैं और तुक–अर्थ को संवारते हैं। इसलिए जिसे 'तुकबंदी करना' कहते हैं, वह काम वे कभी नहीं करते हैं, तुक को भाव–संगीत, ध्वनि संगीत की आंतरिकता के लिए ठीक से मिलाते हैं। जैसे 'घर की याद' कविता की दो काव्य पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं –

पिता जी जिनको बुढ़ापा
एक क्षण भी नहीं व्यापा।

यहाँ 'बुढ़ापा' और 'व्यापा' का लाना मात्र तुक मिलाने के लिए नहीं किया गया है, फलतः दोनों तुकों ने अर्थ प्रकाश किया है। इस अर्थ लय की सिद्धि भी कहा जा सकता है। यह लय भाव वैचित्र्य से रमणीयता में ढाली गई है और उपमान योजना – चन्द्र, सूर्य, नर्मदा, संत आदि ने इसमें भाव प्रसार किया है।

भवानी प्रसाद के काव्य में शास्त्रीय विधान के प्राचीन छंद खोजने पर भी नहीं मिलते। उन पर प्राचीन छंदों की महिमा का आतंक कभी नहीं रहा। माखनलाल चतुर्वेदी की भाँति वे लोक जीवन की लोकलय को लेकर अपना छंद गढ़ते हैं। उनके गीतों में कजरी, मल्हार–आल्हा, लावनी जैसे लोक–रागों की रागनियाँ निर्झर की भांति स्वतः फूटती हैं। कभी–कभार बंगला का पयार छंद 'सन्नाटा' जैसी कविता में चमक छोड़ता है – पर अन्य कविताओं के लिए लय, छंद का अन्वेषण वे स्वयं करते रहे हैं। 'राही नहीं, राहों के अन्वेषी' जैसा प्रयोग उनके लिए बेधड़क किया जा सकता है। रचना की लयात्मक सहजता, भावगति की तीव्रता और प्रखरता काव्यात्मकता को कैसे चमका देती है, यह कला भवानी भाई की अपनी विशिष्टता है जिससे बहुत कुछ सीखा जा सकता है।

बोध प्रश्न –3

1. भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य शिल्प की विशेषताओं पर पाँच पंक्तियों में विचार कीजिए।

   ....
   ....
   ....
   ....

2. भवानी प्रसाद मिश्र जी के काव्य में प्रयुक्त काव्य–रूपों पर पांच पंक्तियाँ लिखिए।

   ....
   ....
   ....
   ....

3. भवानी प्रसाद मिश्र की काव्य–भाषा की विशेषताओं पर दस पंक्तियों में विचार कीजिए।

   ....
   ....
   ....
   ....

4. भवानी प्रसाद मिश्र जी के काव्य प्रतीकों तथा काव्य बिंबों की मूल विशिष्टताओं पर सात पंक्तियों में विचार कीजिए।

....
....
....
....

5. मिश्र जी के लय विधान एवं छंदों पर चार पंक्तियों में अपने विचार लिखिए।

....
....
....
....

9.5 सारांश

छायावादोत्तर हिंदी कविता में भवानी प्रसाद मिश्र को संतों की लोक जागरण परंपरा में रखकर ही परखा जा सकता है। उनका कवि–स्वभाव कबीर से मिलता है। सत्य कहने के लिए वे हर तरह का जोखिम उठाने को हर समय तैयार रहते हैं। व्यवस्था–विरोध में उनका विद्रोही निर्भय रहता है। उनकी कविता का संकल्प यही रहा है कि शब्द को तलवार से ज्यादा पैना बनाना है। गाँव के प्राणी की व्यथा को जन–भाषा में अभिव्यक्त करना है। शब्द की रक्षा ही मानव की रक्षा है –

शब्दकार को
अगर जरूरत पड़े
तो अपने शब्दों पर
मरना चाहिए।

नयी कविता में, गांधी विचार–दर्शन में आस्था रखने वाले वे अकेले कवि हैं। उनकी कविता में कालिदास की प्रकृति प्रकार संवेदना का नए भाव बोध के साथ विस्तार एवं प्रसार है। सामाजिक विषमता, अन्याय–शोषण का चित्रण करते कभी पीछे नहीं रहते। पर उनकी कविता में पश्चिम की नकल नहीं है, ठेठ लोक लय की सर्जनात्मकता है। लोक संवेदना और लोक वेदना को लोक–भाषा में निर्भयता में अभिव्यक्ति देने वाला यह कवि अपने कविकर्म में एक विशिष्ट है।

भवानी प्रसाद मिश्र की काव्यसर्जना का अर्थ विधान और बिंब विधान कई स्तरों पर अपने समकालीनों से विशेषकर अज्ञेय, मुक्तिबोध, शमशेर आदि से विशिष्ट और अलग दृष्टिगत होता है। वे सामान्य आदमी की व्यथा को रचना की केन्द्रीय संवेदना से उजागर करते हैं। इस सामान्य जन में गाँव के किसान–मजदूर की स्थितियों–चिंताओं के यथार्थ चित्र हैं। आजादी के बाद का मोहभंग भवानी प्रसाद मिश्र में स्पष्टतः अभिव्यक्त होता है। प्रगति प्रयोग युग के अधिकतर रचनाकर– वैचारिक स्तर पर साम्यवाद समाजवाद के अधिक निकट रहे हैं, पर भवानी प्रसाद मिश्र ने एकनिष्ठ आस्था के साथ खुले रूप में गांधी विचार–दर्शन को व्यक्त किया है। बोलचाल की काव्य–भाषा प्रतीक विधान छंद और लय में भी उनका स्वर अलग सुनाई देता है। वे रूप विधान से ज्यादा विषयवस्तु की महत्ता को स्थान देते हैं। वैचारिक स्तर पर अस्तित्वाद, अलगाववाद के पश्चिमी दर्शन को अपनी कविता में भटकने तक नहीं देते। एकदम सहज गद्य

विन्यास, बोलचाल का लहजा और छंदों का खनकता प्रयोग करते हैं। उनकी बुनियादी चिंताओं में भारतेन्दु, निराला और केदारनाथ अग्रवाल की लोकपरंपरा जीवन्तता से धड़कती है। अपनी सर्जनात्मक मौलिकता से उन्होंने नयी कविता को नया काव्य मुहावरा दिया है।

9.6 शब्दावली

प्रभाः सं. माखन लाल चतुर्वेदी, सन् 1913 ई. में, खंडवा, मध्य प्रदेश से निकलने वाली क्रांतिकारी विचारों की पत्रिका ।

कर्मवीर :सं. माखन लाल चतुर्वेदी – जबलपुर से 1919 ई. में निकलने वाला पत्र। क्रांतिकारी विचारों के लिए प्रसिद्ध।

सरस्वती : भारतीय भाषा एवं साहित्य की अमर पत्रिका। इसका सम्पादन आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लम्बे समय तक किया। इस पत्रिका ने अनेक लेखक बनाए।

वड्सवर्थः अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद के कवि (1770–1850 ई.) लिरिकल वैलेड्स की भूमिका (1798 ई.)। इस भूमिका ने काव्य विषय तथा काव्य भाषा दोनों को लेकर नव्य अभिजात्यवादियों (नियो–क्लासिकल) पर निर्मम आक्रमण किया। सन् 1800 ई. में इसका दूसरा संस्करण आया।

अतिभावुकता : (सेन्टिमेन्टलिज्म) एक ऐसा खतरा है जिसमें भावुकता के अतिरेक से मानसिक संतुलन नहीं रह पाता।

रिड्र्चस (1893–1979 ई.): ने भाषा के दो भेद किए – वैज्ञानिक तथा रागात्मक भाषा। वैज्ञानिक भाषा का प्रयोग तथ्य कथन के लिए होता है तथा रागात्मक भाषा का भाव संचार के लिए।

कलात्मक अनुभूति : उस अनुभूति को कहते हैं जिसमें संघटन सामान्य अनुभूतियों की तुलना में अधिक होता है।

टी.एस. इलियट (1888–1965 ई.): का मूर्त विधान सिद्धांत (आब्जेक्टिव कोरिलेटिव) भारतीय रस सिद्धांत का विभावन व्यापार है। कविगत भाव की अभिव्यक्ति का प्रधान और अनिवार्य साधन है विभाव। भाव के कारण को विभाव कहते हैं।

नर्मदा : मध्य प्रदेश की प्रसिद्ध नदी। यह क्वारी नदी है। इसकी गति और प्रवाह में अपार शक्ति है। माना जाता है कि परशुराम ने इसी के तट पर तपस्या की थी।

9.7 बोध प्रश्नों /अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. देखिए भाग 9.2.1
2. देखिए भाग 9.2.2 3
3. एवं 4 देखिए भाग 9.2.3

बोध प्रश्न 2

1. देखिए 9.3.1 (काव्यानुभूति)
2. देखिए 9.3.2 (मूल्य दृष्टि)
3. देखिए 9.3.3 (मानव और प्रकृति)
4. देखिए 9.3.4 (जन जीवन के विषय संघर्षों की वाणी)
5. गांधी विचार दर्शन

बोध प्रश्न 3

1 देखिए 9.4 (काव्य–शिल्प)

2 देखिए 9.4.1 (काव्य–रूप)

3 देखिए 9.4.2 (काव्य–भाषा)

4 देखिए 9.4.3 (काव्य प्रतीक और काव्य बिंब)

5 देखिए 9.4.4 (लय और छंद)

9.8 उपयोगी पुस्तकें

विश्वनाथ प्रसाद तिवारी : समकालीन हिंदी कविता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

कृष्णदत्त पालीवाल : भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य संसार, साहित्य निधि, सी–38, ईस्ट कृष्णा नगर, दिल्ली–1100511

प्रेम शंकर रघुवंशी : भवानी भाई, सरला प्रकाशन, नई दिल्ली।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

इकाई 10 : रघुवीर सहाय

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 रघुवीर सहाय का काव्य विकास
10.3 रघुवीर सहाय की राजनीतिक दृष्टि
10.4 रघुवीर सहाय की स्त्री दृष्टि
10.5 सारांश
10.6 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप :

- एक कवि के रूप में रघुवीर सहाय के महत्व से परिचित हो सकेंगी/सकेंगे;
- रघुवीर सहाय के काव्य विकास से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी;
- रघुवीर सहाय के राजनीतिक दृष्टिकोण से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी;
- रघुवीर सहाय के स्त्री दृष्टिकोण को जान सकेंगे/सकेंगी;
- रघुवीर सहाय की सांस्कृतिक दृष्टि को समझ सकेंगे/सकेंगी;

10.1 प्रस्तावना

रघुवीर सहाय हिंदी के अत्यंत महत्वपूर्ण कवि हैं। अज्ञेय द्वारा सम्पादिक 'दूसरा सप्तक' के एक कवि के रूप में वे व्यापक हिंदी समाज के समक्ष आए। वैचारिक दृष्टि से वे लोहियावादी थे। यही कारण है कि उनके चिंतन में मार्क्सवाद की आलोचना दिखाई देती है। वे कांग्रेस की राजनीतिक दृष्टि के भी आलोचक थे। उनके लेखन से यह स्पष्ट होता है कि वे मिले हुए जनतंत्र में ही आवश्यक सुधार की आकांक्षा के आग्रही थे।

रघुवीर सहाय अपने समकालीन कवियों में अपने प्रखर राजनीतिक और स्त्री दृष्टिकोण के लिए जाने पहचाने गये। यह एक तथ्य है कि एक राजनीतिक कवि के रूप में उनकी स्वीकृति वामपंथी आलोचकों के बीच भी लगातार बनी रही और आज भी है। उनके प्रकाशित कविता संग्रह हैं– सीढ़ियों पर धूप में, आत्महत्या के विरूद्ध, हंसो–हंसो जल्दी हंसो, लोग भूल गये हैं, कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ, एक समय था।

10.2 रघुवीर सहाय का काव्य विकास

यह याद रखना जरूरी है कि आज भले ही रघुवीर सहाय अपनी राजनीतिक कविताओं के लिए जाने जाते हैं लेकिन आरंभ में उन्होंने भी प्रेम और प्रकृति की कविताएं ही लिखीं थीं। उनकी आरंभिक कविताओं में गहन रागात्मकता के दर्शन होते हैं। उदाहरण के लिए 1946 में लिखी गई उनकी उपलब्ध पहली कविता 'अंत का प्रारंभ' की इन पंक्तियों को देखा जा सकता है –

मधुर यौवन का मधुर अभिशाप मुझको मिल चुका था
फूल मुरझाया छिपा काँटा निकलकर चुभ चुका था
पुण्य की पहचान लेने, तोड़ बन्धन वासना के
जब तुम्हारी शरण आ, सार्थक हुआ था जन्म मेरा
क्या समझकर कौन जाने, किया तुमने त्याग मेरा
अधम कहकर क्यों दिया इतना निठुर उपलम्भ है यह
अंत का प्रारंभ है यह ।

राग का यह स्वर रघुवीर सहाय की कविताओं में कुछ वर्षों तक चलता रहा। 'दूसरा सप्तक' में संकलित 'बसंत' शीर्षक कविता इस बात का प्रमाण है। रघुवीर सहाय अपने को अभिव्यक्त करने के लिए बार–बार प्रकृति की ओर जाते हैं –

बन की रानी, हरियाली–सा भोला अन्तर
सरसों के फूलों–सी जिसकी खिली जवानी
पकी फसल–सा गरुआ गदराया जिसका तन
अपने प्रिय को आता देख लजायी जाती।

अपनी एक अन्य कविता 'पहला पानी' में वे प्रकृति को इस प्रकार चित्रित करते हैं –

बिजली चमकी
सुरपति के इस लघु इंगित पर
लो यहाँ जामुनी बादल नभ में ठहर गये
आशीष दे रहे हाथों से।

कालांतर में धीरे–धीरे रघुवीर सहाय की राजनीतिक चेतना प्रखर होती चली गयी। भारतीय राजनीति में जवाहर लाल नेहरू की राजनीति के विकल्प के रूप में वे डॉ. राममनोहर लोहिया के विचारों के प्रभाव में आये और जीवन पर्यन्त उससे जुड़े रहे। यह भी एक तथ्य है कि आज कविता के पाठक उन्हें उनकी बाद की कविताओं के लिए ही याद करते हैं।

रघुवीर सहाय की कविताओं को ध्यान से देखने पर यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि भाषा से खेलने का एक भाव उनमें बिल्कुल आरंभ से था। उन्होंने भाषा से खेलते हुए अपनी कई कविताओं में नयी अर्थ दीप्तियाँ पैदा की हैं। कहना होगा कि यह किसी साधारण कवि के बूते की बात नहीं होती है। उनके भाषिक खिलदंड़ेपन को 1951 में लिखी कविता 'अगर कहीं मैं तोता होता' में देखा जा सकता है –

        अगर कहीं मैं तोता होता
तोता होता तो क्या होता?
        तोता होता।
होता तो फिर?
        होता, 'फिर' क्या?
        होता क्या? मैं तोता होता।
        तोता तोता तोता तोता
        तो तो तो तो ता ता ता ता
        बोल पट्ठे सीता राम।

राजनीतिक चेतना के विकास के साथ–साथ रघुवीर सहाय की कविता में यथार्थ का पुट और आग्रह दिखने लगा था। 1951–52 में लिखी कविताएं क्रमशः 'शक्ति दो' और 'वसंत आया' में इसे देखा जा सकता है। 'शक्ति दो' कविता में वे कहते हैं –

शक्ति दो, बल दो, हे पिता
जब दुख के भार से मन थकने आय
पैरों में कुली की–सी लपकती चाल छटपटाय
इतना सौजन्य दो कि दूसरों के बक्स–बिस्तर घर तक पहुँचा आयें
कोट की पीठ मैली न हो, ऐसी दो व्यथा–
शक्ति दो।

कविता की भाषा और यह अभिव्यक्ति इस बात का प्रमाण है कि रघुवीर सहाय ने बहुत जल्द परिपक्वता प्राप्त कर ली थी। जिस उम्र में लोग भावुकता में डूबी कविताएं लिखते हैं उसी उम्र में रघुवीर सहाय गहरी व्यंजना वाली कविताएं लिख रहे थे।

रघुवीर सहाय की कविता का आकाश बहुत बड़ा है। उस आकाश में कविता के कई नक्षत्र हैं। भारतीय समाज के अलग–अलग यथार्थ रघुवीर सहाय की कविताओं में बहुत प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त हुए हैं। उनकी एक अत्यंत मार्मिक कविता है 'दर्द'। इस छोटी सी बेधक कविता की इन पंक्तियों को सिर्फ महसूस किया जा सकता है–

देखो शाम घर जाते बाप के कंधे पर
बच्चे की ऊब देखो
उसको तुम्हारी अंग्रेज़ी कह नहीं सकती
और मेरी हिंदी भी कह नहीं पायेगी
अगले साल।

रघुवीर सहाय इस बात को अच्छी तरह से जानते थे कि इस महादेश में हिंदी और भारतीय भाषाओं को लेकर एक लघुता ग्रंथि लगातार काम करती है। अभिजात्य वर्ग येन–केन प्रकारेण इस लघुता ग्रंथि के भाव में वृद्धि करता रहता है। स्वाधीनता के इतने वर्षों बाद भी हिंदी और भारतीय भाषाओं को वह स्थान नहीं मिल पाया है जिसकी वे हकदार हैं। जिस अंग्रेजी मानसिकता से लंबी लड़ाई लड़ी गई उसी मानसिकता के लोगों का राज चल रहा है। रघुवीर सहाय ने इस स्थिति को स्वाधीनता के 10 वर्षों बाद ही महसूस कर लिया था। 1957 में लिखी उनकी कविता 'हमारी हिंदी' एक शोकगीत की तरह है।

10.3 रघुवीर सहाय की राजनीतिक दृष्टि

हिंदी साहित्य में रघुवीर सहाय की मुख्य पहचान एक राजनीतिक कवि के रूप में है। वे हिंदी के उन थोड़े से कवियों में हैं जिन्होंने राजनीति के अपराधीकरण की सटीक पहचान की। उनकी कुछ कविताएं हिंदी में राजनीतिक कविता का पर्याय मान ली गई हैं। 'अधिनायक' इसी प्रकार की एक कविता है। इस छोटी सी कविता की प्राणवस्तु का विश्लेषण करते हुए लोकतंत्र में उपस्थित विडंबनाओं का रेखांकन किया जाता है। कविता इस प्रकार है –

राष्ट्रगीत में भला कौन वह
भारत–भाग्य विधाता है
फटा सुथन्ना पहने जिसका

गुन हरचरना गाता है।
मख़मल टमटम बल्लम तुरही
पगड़ी छत्र चँवर के साथ
तोप छुड़ाकर ढोल बजाकर
जय–जय कौन कराता है।
पूरब–पश्चिम से आते हैं
नंगे–बूचे नरकंकाल
सिंहासन पर बैठा, उनके
तमगे कौन लगाता है।
कौन–कौन है वह जन–गण–मन–
अधिनायक वह महाबली
डरा हुआ मन बेमन जिसका
बाजा रोज़ बजाता है।

रघुवीर सहाय मूलतः स्वाधीन चेतना के कवि हैं इसलिए उनकी कविता में स्वाधीन व्यक्ति का स्वप्न है। वे बार–बार आम जन के जीवन की ओर लौटते हैं और अपने समय के विद्रूप को वाणी देते हैं। जब उनका संग्रह 'आत्महत्या के विरूद्ध' आया तो वह हिंदी में एक मुहावरा बन गया। इसी शीर्षक की लंबी कविता को हिंदी कविता की एक उपलब्धि की तरह देखा गया।

रघुवीर सहाय अपनी कविताओं में राजनीति के किसी एक पक्ष को ही उजागर नहीं करते बल्कि जहाँ कहीं भी उन्हें दोष नज़र आता है वे उसको रेखांकित करते हैं। उनकी एक छोटी सी कविता है – 'वह कौन था?' यह छोटी सी कविता रघुवीर सहाय की दृष्टि को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है –

वह जनसभा न थी राष्ट्रीय दिवस था
एक बड़े राष्ट्र का
कितने आरामदेह होते हैं अन्य बड़े राष्ट्रों के
राष्ट्रदिवस दिल्ली में
एक मंत्री भीड़ के बीच खोया–सा सहसा मिल गया मुझे
देखते ही बोला– अच्छे हो!
मैंने कहा – हुजूर ने पहचाना!
तब कहने लगा जैसे यही पहचान हो
तुम अभी संकट से मुक्त नहीं हुए हो
फिर जैसे शक हो गया हो कि भूल की –
क्षण भर घूरा मुझे
बोला–कल मेरे पास आना तब बाक़ी बताऊँगा

जाने कौन व्यक्ति था जिसको इसने मुझे समझा।

'रामदास' रघुवीर सहाय की सबसे प्रसिद्ध कविता है। एक तरह से यह रघुवीर सहाय की पहचान के साथ जुड़ी हुई कविता है। यह कविता स्वाधीनता के बाद भारत में तेजी से बढ़े अपराधीकरण और उसको मिले राजनीतिक संरक्षण को प्रभावी ढंग से सामने रखती है। उचित होगा कि यहाँ इस पूरी कविता का पाठ किया जाए। यह कविता सिर्फ कथ्य नहीं, अपने शिल्प के लिए भी महत्वपूर्ण है। आप इस कविता को पढ़ते हुए महसूस करेंगे/करेंगी कि जैसे आपके समक्ष सारे दृश्य घटित हो रहे हैं। भाषा में प्रवाह तो है ही, विडंबना की मारक तीव्रता भी है –

चौड़ी सड़क गली पतली थी

दिन का समय घनी बदली थी
रामदास उस दिन उदास था
अंत समय आ गया पास था
उसे बता यह दिया गया था उसकी हत्या होगी

धीरे–धीरे चला अकेले
सोचा साथ किसी को ले ले
फिर रह गया, सड़क पर सब थे
सभी मौन थे सभी निहत्थे
सभी जानते थे यह उस दिन
उसकी हत्या होगी
खड़ा हुआ वह बीच सड़क पर
छोनों हाथ पेट पर रखकर
सधे कदम रख करके आये
लोग सिमटकर आँख गड़ाये
लगे देखने उसको
जिसकी तय था हत्या होगी
निकल गली से तब हत्यारा
आया उसने नाम पुकारा
हाथ तौलकर चाकू मारा
छूटा लोहू का फ़व्वारा
कहा नहीं था उसने
आख़िर उसकी हत्या होगी
भीड़ ठेलकर लौट गया वह
मरा पड़ा है रामदास यह
देखो देखो बार बार कह
लोग निडर उस जगह खड़े रह
लगे बुलाने उन्हें जिन्हें संशय था हत्या होगी।

इसी प्रकार आपातकाल के दिनों में रघुवीर सहाय की कविताओं ने अपनी जरूरी भूमिका निभाई थी। उनकी प्रसिद्ध कविता 'हँसो हँसो जल्दी हँसो' उस दौर के यथार्थ को अभिव्यक्त करती है। इस कविता की कुछ पंक्तियाँ देखें –

हँसो तुम पर निगाह रखी जा रही है

हँसो अपने पर न हँसना क्योंकि उसकी कड़वाहट
पकड़ ली जायेगी और तुम मारे जाओगे
ऐसे हँसो कि बहुत खुश न मालूम हो
वरना शक होगा कि यह श़ख्स शर्म में शामिल नहीं
और मारे जाओगे

हँसते–हँसते किसी को जानने मत दो किस पर हँसते हो
सबको मानने दो कि तुम सबकी तरह परास्त होकर
एक अपनापे की हँसी हँसते हो
जैसे सब हँसते हैं बोलने के बजाय।

कुल मिलाकर कह सकते हैं कि अपनीउ तीक्ष्ण राजनीतिक दृष्टि के कारण रघुवीर सहाय अपने समय में जितने प्रासंगिक थे उससे कहीं अधिक वे आज प्रासंगिक हैं।

10.4 रघुवीर सहाय की स्त्री दृष्टि

रघुवीर सहाय स्वतंत्र भारत के अत्यंत महत्वपूर्ण कवि हैं। उनकी कविताओं के बिना हिंदी कविता पर की गई कोई भी बातचीत अधूरी होगी। उनकी कविता के बारे में बात करते हुए आलोचक अकसर उनकी राजनीतिक कविताओं की ही बात करते हैं। लेकिन यह एक तथ्य है कि सहाय जी ने स्त्रियों पर और स्त्रियों से संबंधित लगभग अस्सी कविताएं लिखी हैं। वैसे उनकी स्त्रियों से सबंधित कविताएं भी कम राजनीतिक नहीं हैं। उनकी स्त्री संबंधी कविताओं में स्त्री-जीवन की विडंबना और स्त्रियों के संघर्ष का मार्मिक चित्रण हुआ है। सहाय जी भारतीय स्त्री के त्रासद जीवन की सूक्ष्म पड़ताल करते हैं। उनकी अभिव्यक्ति में जितनी पीड़ा है, उतना ही तथाकथित सामाजिक मूल्यों पर व्यंग्य भी। भारतीय समाज में स्त्री सदा से उपेक्षित रही है। आज जब संपूर्ण विश्व में स्त्री-आंदोलनों की गूंज है, तब भारतीय स्त्रियों की स्थिति में भी कुछ परिवर्तन आया है। पुरुष द्वारा हो रहे शोषण में कुछ कमी आई है क्योंकि स्त्रियां अपने अधिकारों के प्रति सचेत होने लगी हैं, लेकिन ऐसी स्त्रियों का प्रतिशत अभी बहुत कम है। भारत में आज भी परिवार और समाज के आदर्श सामंती मूल्यों पर टिके हैं। इस समाज में स्त्री की पराधीनता का दुःख सब जानते हैं लेकिन इस स्थायी (?) मान्यता के आगे सिर झुका लेते हैं कि स्त्री ज्यों ही स्वतंत्र होती है, बिगड़ जाती है। इसी में पुरुषवर्चस्व वाले इस समाज को अपना हित दिखाई देता है। यहां स्त्रियों की स्वतंत्रता को बराबर खतरनाक बताया गया है। उनके शरीर को उनकी पवित्रता का मानक माना गया है। सदियों से उन्हें इस तरह रखा गया है कि उनके विचारों में पुरुषों द्वारा निर्धारित मूल्य घर कर गए हैं। उनकी चेतना अभी उसी से निर्धारित है। कम से कम अस्सी प्रतिशत स्त्रियों के विषय में तो यह कहा ही जा सकता है। उन्हें यह बताया गया है कि स्त्रियों की अपनी कोई इच्छा नहीं होती है। पुरुष की इच्छाओं पर उसे स्वाहा होना होता है। लेकिन पिछले सौ वर्षों में भारतीय स्त्री की स्थिति में कुछ परिवर्तन हुआ है और इसका आर्थिक कारण सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक कारणों से अधिक महत्वपूर्ण है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि रघुवीर समाय का कवि-कर्म गहरे स्तर पर राजनीतिक है। उन्होंने स्त्रियों पर लिखने के लिए अपना ध्यान भारतीय समाज के मध्यवर्ग और निम्नवर्ग पर रखा है। भारतीय मध्यवर्ग की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि उसका आर्थिक पक्ष पूंजीवादी मूल्यों और सामाजिक पक्ष सामंती मूल्यों से संचालित होता है। इन मध्यवर्गीय परिवारों की विडंबना यह है कि इनकी आय ज्यादा नहीं होती और ऐसे में इनके घर की स्त्रियां नौकरी-पेशा हो जाती हैं। वे घर की चौखट लांघ लेती हैं। पुरुष और परिवार की जरूरत से ही सही लेकिन इसी बहाने स्त्री को आजादी की झलक मिल जाती है। झलक इसलिए कि इस वर्ग की स्त्री को नौकरी करने की छूट तो मिल जाती है लेकिन उसके जीवन के अन्य निर्णय उसके परिवार के पुरुष ही करते हैं। यहाँ आपत्ति हो सकती है कि मध्यवर्ग की लड़कियां अब प्रेमविवाह भी कर रही हैं, फिर उपर्युक्त बात कैसे कही जा रही है। इसके भी ठोस कारण हैं। यहां यह ध्यान दिलाना भी आवश्यक है कि प्रेम विवाह की घटनाएं महानगरों में ही अधिक हैं। महानगरीय मध्यवर्ग अपनी लड़की को पढा-लिखाकर नौकरी करने भेज देता है। वह परिवार में आय एक स्रोत होती है। हम पड़ताल करके देख सकते हैं कि इस दूल्हा-बिकाऊ समय में महानगरीय मध्यवर्ग के पास इतनी संपन्नता नहीं है कि वे बेटी के लिए दहेज भी दे सकें। ऐसे में वे असमर्थ होकर अपनी बेटियों या बहनों को प्रेमविवाह करने देते हैं। उनमें भी जो संपन्न हैं, वे ऐसा नहीं करने देते। अखबारों के माध्यम से हम प्रेमियों की हत्या और आत्महत्या की खबरों को पढ़ते रहते हैं। वैसे यहां यह स्वीकार करना भी जरूरी है कि आज पुरुषों में भी कुछ लोग ऐसे हैं जो स्त्री की स्वतंत्रता को उतना ही महत्वपूर्ण मानते हैं, जितना अपनी स्वतंत्रता को। उनके लिए स्त्री की

स्वतंत्रता वह नहीं है जो पुरुष उसे दे रहा है बल्कि वह है जिस स्वतंत्रता में वह स्वयं जी रहा है या जिस स्वतंत्रता में स्त्री जीना चाहती है। रघुवीर सहाय इन सभी स्थितियों की गहन पड़ताल करते हैं। वे यह अनुभव करते हैं कि भारतीय समाज में आज भी–

नारी बिचारी है
पुरुष की मारी है
तन से क्षुधित
मन से मुदित
लपककर-झपककर
अंत में चित है।

हमारे समाज में स्त्री को कैसे रहना है और क्या करना हैं, यह पुरुष तय करते हैं। रघुवीर सहाय ने इस त्रासद सत्य को बहुत बारीकी से पकड़ा है–

पढ़िए गीता
बनिए सीता
फिर इन सबमें लगा पलीता
किसी मूर्ख की हो परिणीता
निज घरबार बसाइए।

इन पंक्तियों में व्यंजित व्यंग्य और व्यथा– दोनों ही ध्यान आकृष्ट करते है। रघुवीर सहाय इस व्यवस्था पर व्यंग्य करते हैं और स्वयं गहरी पीड़ा भी झेलते हैं। उनकी कई कविताओं में स्त्रियों के जीवन की विडंबना का यह चित्रण हुआ है। प्रभु की दया, फिल्म के बाद चीख, बड़ी हो रही लड़की, स्त्री, अभिनेत्री, उनका मन, स्त्री की उम्र, और औरत की जिंदगी आदि कविताओं में स्त्री-जीवन के विविध पहलुओं पर उन्होंने सूक्ष्म दृष्टि डाली है। स्त्री-जीवन की विडंबना पर लिखने के साथ-साथ रघुवीर सहाय स्त्री के संघर्ष पर भी उतना ही ध्यान देते हैं। राजमर्रा के जीवन में घटने वाली कई घटनाएं जिन पर लोगों की दृष्टि नहीं जाती है, उन घटनाओं की पड़ताल करते हुए वे एक नया सच उजागर कर देते हैं। उनकी 'चढ़ती स्त्री' एक ऐसी ही कविता है–

बच्चा गोद में लिए
चलती बस में
चढ़ती स्त्री
और मुझमें कुछ दूर तक घिसटता जाता हुआ।

ये साधारण-सी दिखने वाली पंक्तियां स्त्री के दोहरे संघर्ष को व्यंजित करती हैं। एक स्त्री जो घर के भीतर का संसार तो सजाती ही है, साथ में उसे बाहर भी संघर्ष करना पड़ता है। महानगरीय मध्यवर्ग की आर्थिक स्थिति (खासकर निम्नमध्यवर्ग की) ऐसी नहीं होती है कि उनके घर की स्त्रियां बच्चे के कुछ बड़ा होने तक घर में आराम कर सकें या बच्चे को किसी शिशुगृह में रख सकें। उन्हें भीतर के काम के साथ-साथ बाहर भी पुरुष का हाथ बंटाना पड़ता है। यह दुःखद स्थिति किसी भी संवेदशील व्यक्ति को व्यथित करने के लिए पर्याप्त है। कवि के अंतःकरण में भी इस स्थिति से गहरी व्यथा उत्पन्न हुई है। यह कविता पाठकों को विचलित करती है। उनके भीतर की मनुष्यता को द्रवित करती है। और यह प्रक्रिया इस उम्मीद को बल देती है कि धीरे-धीरे यह दुनिया जरूर बदलेगी। इस कविता के लिखे जाने के बाद के लगभग चालीस–पचास वर्षों में बदली भी है। इसी तरह सहाय जी की 'बैंक में लडकियां' शीर्षक कविता में लड़की का बाह्य और अंतःसंघर्ष विद्यमान है। विडंबना कितनी भयानक है कि लड़की की उम्र

तीस हो चुकी है और भीड़ से घिरे रहकर भी वह बिलकुल अकेली है। यहां तक पहुंचकर उसके लिए सब कुछ यंत्रवत् हो चुका है–

> ध्यान से सुनती है नौजवान ग्राहक को
> खो नहीं जाती है स्वप्न में।

यह हमारे समाज में त्रासद मूल्यों का परिणाम है जिसमें स्त्री की स्थिति सिर्फ दयनीय है। 'चेहरा' शीर्षक कविता गहरी पीड़ा के क्षणों में लिखी गई प्रतीत होती है। यह अकेली कविता रघुवीर जी की अत्यंत सूक्ष्म कवि-दृष्टि का परिचय देने के लिए पर्याप्त है। कविता की शुरुआत होती है कि एक दिन लगा कि लड़की का चेहरा लड़के की तरह हो गया है और प्रतीत हुआ कि शायद यह बंधन से मुक्ति का पहला उपाय है। लेकिन फिर महसूस हुआ कि इतने से कुछ नहीं होगा। उसे कीमती कपड़े और अंग्रेजी चाहिए। सहाय जी लिखते हैं–

> मगर यह लड़की गरीब घर की है
> वह स्वीकृत वर्ग में शामिल होना चाहती है
> और उस वर्ग की लड़कियां जो लड़का बनती हैं
> उनकी तरह बनने की कोशिश एक दुःख भरी कोशिश है
> क्योंकि वह चेहरा बदलकर अपने वर्ग का ही लड़का
> बनेगी
> एक कहीं और अधिक लाचार व्यक्ति एक तरसी हुई
> सहमी हुई
> असहाय लड़की।

यह एक कटु सच्चाई है। और इस सच्चाई से मुंह नहीं मोड़ा जा सकता है। स्त्री-मुक्ति या स्त्री की स्वाधीनता एक जटिल समस्या है और लटकों-झटकों से स्त्री-मुक्ति संभव नहीं है। स्त्री की स्वाधीनता तभी पूर्ण होगी जब पितृ-सत्तात्मक व्यवस्था का अंत होगा। समाज के मूलभूत चिंतन में पूरा बदलाव आएगा और स्त्री-पुरुष संबंधों में लैंगिक भेद को कोई कमजोरी नहीं माना जाएगा। रघुवीर सहाय की स्त्री संबंधी कविताओं में स्त्री-जीवन की विडंबना और स्त्री के संघर्ष की अभिव्यक्ति के साथ-साथ स्त्री की मुक्ति के लिए जो छटपटाहट है, वह इसी आकांक्षा के कारण है। अपनी एक कविता 'हमने यह देखा' की इन पंक्तियों में वे स्त्रियों का पक्ष इस प्रकार रखते हैं–

> हमको तो अपने हक सब मिलने चाहिए
> हम तो सारा का सारा लेंगे जीवन
> 'कम से कम' वाली बात न हमसे कहिए।

निश्चित रूप से इस सृष्टि में वह सबसे सुंदर समय होगा जब रिश्तों में सिर्फ प्रेम होगा, कोई मोल-भाव नहीं।

बोध प्रश्न –1

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

1. रघुवीर सहाय की कविता में राजनीतिक चेतना पर प्रकाश डालिए।

   ....
   ....
   ....
   ....

2. अधिनायक कविता का मूल प्रतिपाद्य स्पष्ट कीजिए।

....
....
....
....

3. रघुवीर सहाय मूलतः स्वाधीन चेतना के कवि हैं। स्पष्ट कीजिए।

....
....
....
....

बोध प्रश्न

निम्नलिखित में से कौन सा कथन सही/गलत है –

i. रघुवीर सहाय की कविता में स्त्री जीवन के प्रति गहरी चिंता का भाव है। (सही/गलत)

ii. 'रामदास' रघुवीर सहाय की अचर्चित कविता है। (सही/गलत)

iii. राजनीति में बढ़ते अपराधी करण पर रघुवीर सहाय ने अपनी कविता में टिप्पणी की है। (सही/गलत)

अभ्यास प्रश्न

1. रघुवीर सहाय के काव्य–विकास पर विचार कीजिए।

....
....
....
....

2. नई कविता में रघुवीर सहाय का स्थान निर्धारित कीजिए।

....
....
....
....

3. रघुवीर सहाय की कविता में मध्यवर्गीय जीवन संघर्ष पर टिप्पणी कीजिए।

....
....
....
....

10.5 सारांश

अब आपने इस इकाई का अध्ययन पूरा कर लिया है। आपने यह जान लिया है कि रघुवीर सहाय एक युग चेतस कवि थे। वे अपने समय और समाज को दर्ज करने में विश्वास रखते थे इसलिए उनकी कविताएं आज भी प्रासंगिक हैं। वे संश्लिष्ट भावबोध को भी सहजता से अभिव्यक्त करने में पारंगत थे। एक व्यंग्य बोध उनकी भाषा में सदैव बना रहता था। निश्चय ही इससे उनकी भाषा की संप्रेषणीयता बढ़ जाती थी। समकालीन कविता में स्त्री जीवन के विभिन्न पक्षों को इतने सुचिंतित ढंग से अभिव्यक्त करने वाले वे हिंदी के विलक्षण कवि थे। यहाँ यह रेखांकित करना जरूरी है कि उन्होंने यह कार्य बिना किसी विमर्श का संदर्भ लिए हुए किया। यह उनकी चेतना और राजनीतिक दृष्टि के कारण संभव हुआ था। विश्वास है कि अब आप रघुवीर सहाय की कविता की विशेषताओं से परिचित हो चुके होंगी/होंगे।

10.6 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न –1

1. देखिए 10.3
2. देखिए 10.3
3. देखिए 10.2, 10.3

बोध प्रश्न –2

i.सही ii.गलत iii.सही

इकाई 11 : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 युग परिवेश

11.3 कवि परिचय

- 11.3.1 जीवन परिचय
- 11.3.2 कवि व्यक्तित्व
- 11.3.3 रचनाएँ

11.4 काव्य संवेदना

- 11.4.1 अनुभूति पक्ष की सामाजिकता
- 11.4.2 ग्रामीण संवेदना
- 11.4.3 आधुनिक भाव–बोध
- 11.4.4 सत्ता का विरोध और क्रांतिकारी आवाज
- 11.4.5 परम्परा और प्रयोग
- 11.4.6 विचारधारा और प्रभाव
- 11.4.7 व्यंग्य वक्रोक्ति को ओर रुझान
- 11.4.8 प्रकृति और जीवन दृष्टि

11.5 अभिव्यंजना शिल्प

- 11.5.1 काव्य रूप
- 11.5.2 काव्य–भाषा
- 11.5.3 बिंब और प्रतीक
- 11.5.4 नवीन उपमान योजना
- 11.5.5 छंद और लय

11.6 सारांश

11.7 शब्दावली

11.8 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

11.9 उपयोगी पुस्तकें

11.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व के बारे में बता सकेंगी/सकेंगे;
- उनके युग–परिवेश की जानकारी दे सकेंगी/सकेंगे;

- सर्वेश्वर की कविता की संवेदना यानी उनकी कविता के कथ्य, अनुभूति की सामाजिकता, विचारधारा का उन पर आए प्रभावों की चर्चा कर सकेंगी/ सकेंगे;
- उनके द्वारा परंपरा को स्वीकृति और उसमें किए गए प्रयोगों का विश्लेषण कर सकेंगी/ सकेंगे;
- सर्वेश्वर की कविता के क्रांतिकारी स्वर और व्यंग्यात्मकता को पहचान सकेंगी/सकेंग;,
- उनकी काव्य–भाषा और बिंब–विधान की चर्चा कर सकेंगी/सकेंगे;
- सर्वेश्वर की उपमान योजना और छंदों के बारे में बता सकेंगी/सकेंगे और
- हिन्दी कविता को उनके योगदान का उल्लेख कर सकेंगी/सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

इस खंड की पिछली इकाइयों में आप प्रयोगवाद और नयी कविता के स्वरूप और विकास के बारे में पढ़ चुके हैं। इस तरह आप पाँचवे दशक और उसके बाद की हिंदी कविता के कथ्य, शिल्प और संवेदना में आए बदलाव से भली भांति परिचित हो चुके हैं। नयी कविता के दो प्रमुख कवियों – अज्ञेय और मुक्तिबोध के बारे में भी आपने पिछली दो इकाइयों में अध्ययन किया है। हिंदी कविता के बदलते हुए मुहावरे और सामाजिक सरोकारों के बारे में आप जान गए हैं। इस इकाई में आप नयी कविता के एक अन्य महत्त्वपूर्ण कवि सर्वेश्वरदयाल सक्सेना और उनकी कविता के बारे में पढ़ेगे। सर्वेश्वरदयाल जी ने कविता लिखना सन् 1950–51 के आस–पास शुरू किया था। पिछली इकाइयों में आपने अज्ञेय द्वारा संपादित 'तार सप्तक', 'दूसरा सप्तक' तथा 'तीसरा सप्तक' के बारे में पढ़ा है। आप जानते हैं कि इन तीन काव्य–संग्रहों का प्रकाशन हिंदी कविता के क्षेत्र में महत्वपूर्ण घटनाएं रहीं हैं। ये तीनों संग्रह नए काव्यांदोलनों को लेकर आए। सर्वेश्वर जी तीसरे सप्तक के कवि हैं यद्यपि उन्होंने कविता लेखन काफी पहले ही शुरू कर दिया था।

11.2 युग परिवेश

स्वाधीनता प्राप्ति से पहले का साहित्य राष्ट्रीय–सांस्कृतिक जागरण की चेतना का साहित्य है। मुक्ति की आकांक्षा इसका बाल स्वर है। यह मुक्ति रचनाकार जीवन के सभी क्षेत्रों में चाहता है। राजनीतिक गुलामी की समाप्ति के साथ–साथ वह मनुष्य को सामाजिक–नैतिक–आर्थिक–सांस्कृतिक हर स्तर पर उन बंधनों से मुक्त कराना चाहता है जो मनुष्य की प्रगति के मार्ग की बाधा थे। भारतेन्दु युग से लेकर द्विवेदी युग, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद तक के साहित्य में यह आकांक्षा अपने–अपने ढंग से व्यक्त हुई है। एक तरफ विदेशी साम्राज्यवाद और पूँजीवाद के शोषण के खिलाफ आवाज दिखाई देती है तो दूसरी तरफ सामाजिक कुरीतियों और गैर बराबरी के प्रति। कहीं नारी जागरण का स्वर दिखाई देता है तो कहीं हरिजन उद्धार और किसान–मजदूरों के उन्नयन की इच्छा का। कविता के विषय और शिल्प–संरचना में भी तेजी से नए–नए बदलाव सामने आते हैं।

राष्ट्रव्यापी स्वाधीनता आंदोलन ने जन–मानस में विभिन्न प्रकार के स्वप्नों की सृष्टि की थी। हम सोच रहे थे कि आजादी के बाद ऐसे राष्ट्र का निर्माण हो सकेगा जो मानवतावादी मूल्यों की

सर्वोपरि स्थापना करता हुआ 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' समाज की सृष्टि कर सकेगा। गाँधी, तिलक, सुभाष, भगतसिंह आदि के आदर्शों पर निर्मित समाज की कल्पना हमें पूरी होती दिखाई दे रही थी। किन्तु आजादी के बाद का यथार्थ इन आदर्शों के विपरीत साबित हुआ। आजादी का सवेरा देश के बंटवारे और सांप्रदायिक दंगों के भीषण रक्तपात और वैमनस्य में हुआ। अलगाववादी ताकतें प्रबल होती दिखाई दीं। संकट के बादलों से घिरे भविष्य की ओर संकेत करते हुए कवि ने लिखा –

ऊँची हुई मशाल हमारी आगे कठिन डगर है
शत्रु हट गया लेकिन उसकी छायाओं का डर है
आज प्रलय की रात पहरुए सावधान रहना।

– गिरिजाकुमार माथुर

जिन छायाओं का डर था वे प्रत्यक्ष मंडराती हुई सामने आयीं और हमें भाषा, जाति, धर्म, प्रांतीयता आदि के नाम पर बढ़ती हुई सांप्रदायिकता का सामना करना पड़ा।

आजादी के सपनों से हमारा मोहभंग हुआ। हमने महसूस किया कि हमें केवल राजनीतिक आजादी मिली है। आर्थिक शोषण से हम मुक्त नहीं हुए हैं। देश का औद्योगीकरण तो हुआ किन्तु न तो किसान–मजदूर की हालत में सुधार होता दिखाई दिया और न ही निम्न मध्यवर्ग का शोषण रुका। गोरे साहबों के चले जाने पर जो देशी साहब कुर्सी पर आए वे भी अन्याय और लूट में अंग्रेजी साहबों से पीछे नहीं थे। गाँधी की हत्या केवल एक घटना मात्र नहीं रही। उसके साथ जीवन मूल्यों की भी हत्या होती दिखाई दी। राष्ट्रीय विकास कार्यों, पंचवर्षीय योजनाओं, सुधार कार्यक्रमों के बावजूद आम आदमी पर अभावों–पीड़ाओं का बोझ कम न हुआ। भ्रष्टाचार और पूँजीवाद का प्रसार होता दिखाई दिया। राष्ट्रीयता के नाम की दुहाई देने वालों के चेहरों के पीछे का जो असली चेहरा सामने आया उसने हमारे जीवन में कुंठा और घुटन की सृष्टि की। मोहभंग से पैदा इस संत्रास और पीड़ा ने साहित्यकार को संघर्ष की ओर अग्रसर किया। कवि ने अपने सामाजिक दायित्व को पहचाना और यथार्थ जीवन के संघर्षों से जूझने के लिए कलम उठाई।

दूसरी ओर देश में औद्योगीकरण के साथ ही शहरीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई जिसके साथ समाज में मध्यवर्ग का उदय हुआ। बात यह नहीं कि मध्यवर्ग पहले था ही नहीं। लेकिन अब इसमें एक निश्चित तरह का बदलाव था। पुरानी समाज व्यवस्था मूलतः कृषि–व्यवस्था और हस्तशिल्प पर केन्द्रित थी। आजादी से पहले अंग्रेजों ने अपने लाभ के लिए जो थोड़े बहुत उद्योग यहाँ स्थापित किए थे या सरकारी नौकरियों पर नियुक्तियाँ की थीं उनके कारण ही गाँवों से लोग शहरों की तरफ मुड़े थे। लेकिन आजादी के बाद स्वतंत्र रूप से स्थापित उद्योगों तथा उद्योग नगरों में बड़ी मात्रा में मजदूर वर्ग गाँवों से शहरों में आया। पुराने शहरों का विस्तार हुआ और नए शहर, कस्बे तथा उद्योग–नगर बसने लगे। परिणामस्वरूप कृषि से इतर वर्ग भी रोजगार की तलाश में शहरों की ओर चल पड़ा। इस तरह बदलते हुए उत्पादन संबंधों ने समाज व्यवस्था में बुनियादी परिवर्तन उत्पन्न किए महानगरों का विकास हुआ।

इस बदलती हुई सामाजिक व्यवस्था ने एक जागरूक मध्यवर्ग को जन्म दिया जो अपने साधनों की सीमाओं को जानता था और उन सीमाओं के कारणों के प्रति भी सचेत था। यही वह वर्ग था जो ऊपर तथा नीचे के वर्ग को जोड़ता था, किन्तु अपनी व्यथा के भीतर संत्रस्त था। इस मध्यवर्ग की घुटन, कुंठा और आक्रोश की अभिव्यक्ति भी इस युग के साहित्य में हुई है। इस आक्रोश और घुटन का एक आयाम श्रम का परायापन, आत्मनिर्वासन, अवमानवीकरण और अकेलापन (Alicnation) था। गाँव उससे छूट तो गया था, किंतु उसकी चेतना में जीवित था। वह गाँव और शहर के बीच की आर्थिक दूरी के प्रति भी जागरूक था। विकास के नाम पर किए जा रहे प्रयासों और उनसे प्राप्त होने वाले लाभ में किसान–मजदूरों के अल्पांश की हिस्सेदारी को भी देख रहा था। कहना चाहिए कि असलियत से वह काफी वाकिफ था और उसे बेनकाब कर उसके खिलाफ संघर्ष के लिए उत्सुक नयी कविता का सृजन इसी मनोभूमिका में हुआ है।

11.3 कवि परिचय

11.3.1 जीवन–परिचय

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का जन्म 15 सितंबर 1927 को बस्ती उत्तर प्रदेश में हुआ था। आरंभिक शिक्षा बस्ती में तथा उच्च शिक्षा क्वींस कालेज वाराणसी और इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हुई। सन् 1949 में उन्होंने हिंदी में एम. ए. किया। आरंभ में कुछ समय स्कूल में शिक्षक रहे। फिर सरकारी कार्यालय में नौकरी की। थोड़े दिन के लिए आकाशवाणी के दिल्ली तथा अन्य केन्द्रों में कार्य किया। सन 1969 से 1982 तक हिंदी साप्ताहिक 'दिनमान' में काम किया। उसके बाद बाल पत्रिका 'पराग' के संपादक बने। किन्तु पराग की सेवा बहुत थोड़े ही दिन कर पाए। 23 सितंबर 1983 को 56 वर्ष की अल्पायु में उनका देहांत हो गया।

11.3.2 कवि व्यक्तित्व

सर्वेश्वर के कवि व्यक्तित्व की बनावट में दो तत्वों ने महत्वपर्ण भूमिका निभाई–भारतीय ग्राम्य जीवन की संवेदना और समाजवादी विचारधारा। उनका बचपन गाँव के जिस हरे–भरे उन्मुक्त वातावरण में बीता था उसने उनकी सृजन चेतना को इतने गहरे तक प्रभावित किया कि महानगर उनको हमेशा पराया ही लगता रहा वस्तुतः कोई मोह न होकर भारतीय जन–जीवन से जुड़ाव है। उनकी कविता जिस मामूली आदमी की पीड़ा को प्रस्तुत करती है उसकी संवेदना का निर्माण इन्हीं ग्राम्य संस्कारों से हुआ है। इसीलिए वे खेतिहर मजदूरों, किसानों, चरवाहों, ग्रामीण बच्चों, खेत की मेड़ों, मैदानों, नदियों और पोखरों के चित्र उनकी रचनाओं में यत्र–तत्र मिलते हैं। लोहियावादी समाजवादी विचारों के संस्कार उन्हें विद्यार्थी जीवन में मिले। उनका परिचय समाजवादी कवि समीक्षक विजयदेव नारायण साही से हुआ। तभी वे प्रयाग की साहित्यक संस्था 'परिमल' के संपर्क में आए। समाजवादी विचारधारा का प्रभाव उनके जीवन तथा लेखन पर अंत तक रहा। कुछ समय तक वे 'परिमल' के कार्यवाहक सचिव भी रहे।

11.3.3 रचनाएँ

सर्वेश्वर जी कवि, कथाकार, नाटककार, साहित्य चिन्तक, संस्मरणकार, पत्रकार तथा कला समीक्षक थे। उनका पहली रचना सन् 1944 में 'माधुरी' में छपी थी। उसके बाद कभी–कभार कहानियाँ लिखते रहे और विद्यार्थी जीवन में ही कहानीकार के रूप में अपनी पहचान बना ली।

उनका प्रथम काव्य संग्रह 'काठ की घंटियाँ' सन् 1959 में छपा। इसमें सन् 1949 से 1957 तक की कविताएँ संकलित हैं। इसी वर्ष अज्ञेय जी के संपादकत्व में छपे 'तीसरा सप्तक' में भी सर्वेश्वर की कविताएँ छपी। काव्य लेखन में सक्रियता सन् 1951 से आई। इन्हीं दिनों वे 'परिमल गोष्ठी' में तेजी से चर्चित हुए और उनकी कविताओं में नयी कविता की पर्याप्त संभावनाएं दिखायी दी। इसके बाद उनके अगले काव्य संग्रह क्रमशः इस प्रकार छपे – 'बाँस का पुल' (1963), 'एक सूनी नाव' (1966), 'गर्म हवाएँ'(1969), 'कुआनो नदी' (1973), 'जंगल का दर्द' (1976), 'खूटियों पर टँगे लोग' (1982)। उनके नाटकों में 'बकरी' (1974), 'लड़ाई' (1979), 'अब गरीबी हटाओ' (1981), 'रूपमती बाज बहादुर' तथा 'होरी धूम मचा री' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उपन्यासों में 'पागल कुत्तों का मसीहा', 'सोया हुआ पल', 'सड़क' आदि उल्लेखनीय हैं। सर्वेश्वर जी ने बच्चों के लिए कई पुस्तकें लिखीं। उनके बाल साहित्य में 'बतूता का जूता', 'मँहगू की टाई', 'भौ–भौं खो–खों' तथा 'लाख की नाक' प्रमुख हैं। पत्रकार के रूप में उनकी खास पहचान 'दिनमान' साप्ताहिक के 'चरचे और चरखे' नामक व्यंग्य कालम के लिए तथा विविध पत्र–पत्रिकाओं में साहित्य रंगमंच, नृत्य और संस्कति पर समीक्षात्मक लेखन के लिए है।

उनके कविता संग्रह 'खूँटियों पर टंगे लोग' को सन् 1983 के साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

बोध प्रश्न –1

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर अधिक से अधिक चार–पाँच शब्दों में दें।

1. सर्वेश्वर कौन से सप्तक के कवि हैं ?

   ....
   ....
   ....
   ....

2. सर्वेश्वर के पहले काव्य संकलन का नाम क्या है?

   ....
   ....
   ....
   ....

3. सर्वेश्वर ने कविता के अलावा और किस क्षेत्र में लेखन किया?

   ....
   ....
   ....
   ....

4. सर्वेश्वर को कौन–सी कृति पर साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला?

   ....
   ....
   ....
   ....

अभ्यास

1. सर्वेश्वर के काव्य लेखन के समय के युग परिवेश की विशेषताएँ लगभग 10 पंक्तियों में बताइए।

   ....

   ....

   ....

   ....

11.4 काव्य संवेदना

11.4.1 अनुभूति पक्ष की सामाजिकता

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना नयी कविता की प्रगतिशील धारा के कवि हैं। आजादी के बाद हिंदी साहित्य में शब्द को कर्म की अर्थवत्ता से जोड़ने के लिए रचनाकार ने जो दायित्व अपने ऊपर लिया और जिसे पूरा करने के लिए वह निरंतर संघर्षरत रहा, सर्वेश्वर उसी संघर्ष के प्रति प्रतिबद्ध रचनाकार हैं। अपनी कविता में उन्होंने अपने समय और समाज की समस्याओं, चिंताओं, मनोदशाओं, विसंगतियों और विद्रूपताओं, आत्म–निर्वासन और पराएपन को वाणी दी। वे अकेले में बैठ अपनी व्यक्तिगत समस्याओं से जूझने या उन्हें मुखर करने वाले कवि नहीं हैं। सम सामयिक जीवन–संदर्भों और समस्याओं से सीधे जुड़ने के कारण उनकी संवेदनात्मक क्षमता ने उनकी कविता को निरंतर नवीन विचारों और दृष्टियों से संपन्न बनाया है। उनके काव्य संकलन उनकी इस विकास यात्रा के परिचायक हैं।

नयी कविता ने जीवन के यथार्थ संघर्षों को पहचानते हुए राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक सभी क्षेत्रों में सांस्कृतिक विघटन के कारण विघटित मूल्यों के विरुद्ध समाज लड़ा है। यह समर सर्वेश्वर ने संवेदना, विषयवस्तु और काव्य–भाषा तीनों के स्तर पर जम कर लड़ा। वे मानते थे कि जरूरी नहीं कि कविता ऐतिहासिक–पौराणिक विषयों पर ही लिखा जाए – वह किसी भी विषय पर लिखी जा सकती है। कवि की दृष्टि इतनी व्यापक होनी चाहिए कि वह विषय को उस कोण से देख सके जहाँ से वह संवेदना को छूता हो। अपनी इस दृष्टि के कारण ही सर्वेश्वर की कविता के केन्द्र में विशिष्ट व्यक्ति न होकर आम आदमी रहा है। मामूली आदमी की पीड़ा के चित्र उनकी कविता में बहुत मिलते हैं –

> जिन्दगी को अर्थ देने के चक्कर में
> वह व्यर्थ हो गया है
> मंदिरों में झाड़ू लगाते
> और कीर्तन सभाओं की दरियाँ बिछाते–बिछाते
> वह किसी भी काम के लिए असमर्थ हो गया है।
>
> – **'गर्म हवाएँ'**

मौजूदा समाज की व्यवस्था में शोषित व्यक्ति का यह चित्र मानवीय अनुभूति की गहराई को छूने के साथ ही साथ वर्गों में बँटे समाज की व्यथा को मुखर करता है। इसी तरह का एक और चित्र है जो सामाजिक शोषण और अन्याय से पिसते हुए मनुष्य को प्रस्तुत करता है –

यह खेतिहर मजदूर भूख से मर गया
यह चौपाए के साथ बाढ़ में बह गया,
यह सरकारी बाग की रखवाली करता था
लू में टपक गया।

– 'कुआनो नदी'

उनकी कविता में निजी सुख–दुख के साथ समाज का विशेषरूप से उसके दलित शोषित वर्ग का सुख–दुख भी व्यक्त हुआ। आरंभिक कविताओं में व्यक्त निजी सुख–दुख का स्थान धीरे–धीरे परवर्ती कविताओं में जीवन जगत की वास्तविकताएँ लेती गई। परिवेश के साथ कवि का लगाव दृढ़तर होता गया।

11.4.2 ग्रामीण संवेदना

सर्वेश्वरदयाल मूलतः ग्रामीण संवेदना के रचनाकार हैं। शहरी या कस्बाई जीवन और संवेदना भी उनकी कविता में हैं किन्तु गाँव वहाँ हर क्षण मौजूद है। गाँव की पगडंडी, कच्ची सड़क, भुजैनिया का पोखरा, कीचड़ में खड़े चौपाए, पीठ पर बस्ता लिए ईंट चलाते बच्चे, कुआनो नदी, पनियल साँपों के रेंगने की आहट, काछी–किसान–मजदूर के विभिन्न चित्र वहाँ मिलते हैं। लोक जीवन के विविध रूप उनके इन ग्राम्य जीवन के चित्रों में मिलते हैं। ग्राम्य परिवेश उनकी कविता में संवेदना और भाषा दोनों के स्तर पर मौजूद रहता है। ग्रामीण शब्दावली, मुहावरों, कहावतों का प्रयोग उनकी कविता में खुलकर हुआ है। कुछ कविताएँ तो ग्राम–गीतों की तर्ज पर लिखी गई हैं जैसे – 'सावन का गीत', 'चरवाहों का युगल गान', 'चुपाई मारौ दुल्हन', 'झाड़े रौ महकुआ', 'गरीबा का गीत' आदि जैसी समर्थ कविताएँ ग्राम गीतों की तर्ज पर ही हैं। इनके माध्यम से कवि पाठक को गाँव के जीवन का करीबी अहसास कराना चाहता है। उसके जीवन के अभावों, तकलीफों और उपेक्षा का निकट से अनुभव कराना चाहता है। सर्वेश्वर की कविता में व्यक्त मामूली आदमी की पीड़ा मूलतः गाँव के जीवन से जुड़ी है।

महानगर की यंत्रणा से वे बेचैन हैं। महानगर की पीड़ा–कराह का स्वर उनमें दर्द की मरोड़ पैदा करता है। यहाँ का पराएपन का अहसास उन्हें रूलाता है। लेकिन जब शहर गाँव में घुस पड़ता दिखाई देता है तो कवि को अपना इतिहास भी छिनता दिखाई देता है और बीता हुआ अपनापन भी छूटता दिखाई देता है। जब वह कहते हैं –

सुनो! सुनो!
यहीं कहीं एक कच्ची सड़क थी
जो मेरे गाँव को जाती है।

कच्ची सड़क की जगह बनी पक्की सड़क उस तबाही का ध्यान दिलाती है जो महानगर ने आम आदमी के लिए पैदा कर दी है। यह तबाही है गैर बराबरी की, प्रतिस्पर्धा की, बेरोजगारी, और भुखमरी की, मूल्यों के विघटन की। पुराने मूल्यों को हम छोड़ चुके हैं, नए मूल्यों की स्थापना

नहीं कर पाए हैं। आधुनिकीकरण के नाम पर हुए पश्चिमीकरण ने जीवन में जो संत्रास और घुटन पैदा की है उसको गाँवों की ओर बढ़ते देख कवि के मन में पीछे छूटे हुए गाँव की 'हुड़क' उठती है। नीम की निबौलियों, आम की डालों, महुआ, इमली, जामुनों और काँसे की चूड़ियों के प्रति यह हुड़क एक तरह का व्यामोह नहीं है, वरन् इसमें ग्रामीण जन–मानस की व्यथा बोलती है और कवि महसूस करता है कि शहरीकरण की इस प्रक्रिया से इस व्यथा का उद्धार नहीं होने वाला है। वह जानता है कि जो उपभोक्ता संस्कृति पनपी है उसमें गाँव शहरों की जरूरतों को पूरा करने के साधन मात्र रह गए हैं। राष्ट्रीय विकास कार्यों से मिलने वाले लाभ का बड़ा भाग शहरों ने पाया है, गाँवों को उनका पूरा भाग नहीं मिला है। गाँवों में विकास के नाम पर जो सुविधाएँ पहुँचाई गई हैं उसका भोक्ता भी संपन्न वर्ग है। किसान–मजदूर अब भी दलित शोषित हैं। शहर द्वारा गाँव के शोषण से वह व्यथित हैं। कवि संपूर्ण संकल्प से किसानों और मजदूरों में मिल जाना चाहता है –'उनका और उनके लिए होना चाहता है'। सदियों से दलित–शोषित, अनपढ़ खेतिहर मजदूर को क्रांति के अंगारों का सामूहिक आग का मतलब समझाना चाहता है। अभावों से ठंडे उनके चूल्हों में धधकना चाहता है –

> वह आग मेरे करीब आती जा रही है।
> कभी मैं किसानों की चिलमों में अंगारे की तरह दमकने की कामना करता था,
> मजदूरों की बीड़ियों में सुलगने के ख्वाब देखता था।

आजादी के बाद तेजी से गाँवों से शहरों की ओर प्रवास हुआ। रोजी की तलाश में आए आदमी ने अपना संघर्ष अकेले झेला। एक बार आने के बाद वह वापस न जा सका। उसकी चेतना गाँव और शहर के बीच खींचतान की बनी रही। शहरी जीवन ने उसे अपने में ऐसा लपेट लिया कि मुड़कर वापस जाना उसके लिए संभव न रहा। यह चेतना अधिकांश शहर आए जनों की है चाहे वे यहाँ आकर चार पैसे कमाकर संपन्न हो गए हों, चाहे यहाँ भी तसला ढोने और फुटपाथ पर सोने के लिए मजबूर हों।

11.4.3 आधुनिक भाव–बोध

सर्वेश्वर की आरंभिक कविताओं में अज्ञेय और धर्मवीर भारती की तरह रोमांटिक भावबोध की प्रधानता है किंतु धीरे–धीरे यह रोमांटिक भावबोध जीवन–जगत की विषमताओं से टकरा कर टूट जाता है। 'गर्म हवाएँ' संकलन इसी ठंडे सवेरे के खो जाने का प्रतीक है। आगे के सभी संग्रहों में 'गर्म हवाएँ' की यह ज्वलनशील चेतना बलवती होती जाती है। 'जंगल का दर्द', 'कुआनो नदी' और 'खूटियों पर टंगे लोग' में अनुभव की सामाजिक व्याप्ति और सामाजिक दायित्व लोक–संस्कृति का भाव बन जाते हैं।

नयी कविता की प्रगतिशीलधारा के प्रतिनिधि कवि सर्वेश्वर ने सामंतवादी, साम्राज्यवादी, उपनिवेशवादी, अलगाववादी शक्तियों के प्रति जनता को सावधान किया। देश में राजनीतिक और आर्थिक दोनों क्षेत्रों में सक्रिय संकट की ओर आगाह किया। आजादी के बाद का मोह–भंग उनकी पूरी काव्य–संवेदना में भीतर–बाहर व्याप्त है। स्वाधीनता संघर्ष के दौरान जो स्वप्न हमने देखे थे वे एक–एक कर मिटते दिखाई देते हैं। आदर्शों का खोखलापन वादों का ढोंग, नारों की शून्यता उन्हें प्रत्यक्ष दिखाई देती है। 'यह खिड़की' नामक कविता में वे लिखते हैं –

अब मैं यह खिड़की नहीं खोलूँगा
x x x x
यह बंद कमरा
सलामी मंच है
जहाँ मैं खड़ा हूँ –
पचास करोड़ आदमी खाली पेट
ठठरियाँ खड़ खड़ाते
हर क्षण मेरे सामने से गुजर जाते हैं
झाँकियाँ निकलती हैं
ढोंग की विश्वासघात की
बदबू आती है हर बार
एक मरी बात की
लोकतंत्र को जूते की तरह
लाठी में लटकाये
भागे जा रहे हैं सभी
सीना फुलाए।

यहाँ 'लोकतंत्र को जूते की तरह लटकाना' लोकतंत्र की निरर्थकता का बड़ा ही सजीव बिंब प्रस्तुत कर देता है। जूता यदि पैर में पहना जाए तो पैर की सुरक्षा करता है। किन्तु यदि पैरों में पहनने की बजाय इसे लाठी के ऊपर लटका दिया जाता है तो केवल अपने होने का अहसास कराता है। लोकतंत्र भी यदि केवल सिद्धांत रूप में अपना लिया जाए, उन सिद्धांतों पर अमल न किया जाए तो वह लाठी पर लटके जूतों के समान ही दिखावटी होता है। मोहभंग की स्थितियों से उत्पन्न, अवसाद और विवशता सर्वेश्वर की कविता में शुरू से दिखाई देती हैं। धीरे–धीरे यह निजी से सामान्य और सामाजिक होती जाती है। उनकी दृष्टि आत्मपरक से वस्तुपरक होती जाती है। यह बदलाव नीचे दिए गए दो उदाहरणों से स्पष्ट है। उदाहरण 'क' की निजता उदाहरण 'ख' की सामाजिकता में बदल जाती है –

(क) 'बोलना चाहता है, अपनी पग ध्वनि से बोल
दर्द की गाँठ तू अपने ही छालों पर खोल'

(ख) 'मैं जानता हूँ मेरे दोस्त
कि हमारे–तुम्हारे
और सबके आँसू
इस धरती पर गिरेंगे
और सूखते चले जाएँगे।'

कविता में व्याप्त निराशा, घुटन, आत्म–निर्वासन, पराएपन और अकेलेपन की स्थितियों के कारण कभी–कभी सर्वेश्वर पर अस्तित्ववाद का प्रभाव भी स्वीकार कर लिया जाता है। 'कुआनो नदी' का 'मुर्दाघाट का पाट' तथा कविताओं में जगह–जगह टूटन, पराजय या बस्ती के चित्रों के आधार पर या लाश, मृत्यु, सड़ाँध, केंचुओं, केकड़ों, गुबरलों आदि को प्रतीक के रूप में इस्तेमाल करने के कारण कभी–कभी उन पर अस्तित्ववाद के प्रभाव का भ्रम हो जाता है। किन्तु

जन–शक्ति में आस्था रखने के कारण सर्वेश्वर पश्चिम की अस्तित्ववादी और अनास्थावादी विचारधारा के कवि नहीं हैं। कविताओं में पस्ती–पराजय के अंकन और भदेस प्रतीकों के इस्तेमाल के बावजूद वे आस्था के कवि हैं, क्रांति और परिवर्तन में विश्वास रखते हैं। वह स्थितियों को उनके क्रूर, निर्मम यथार्थ रूप में प्रस्तुत करना चाहते हैं।

11.4.4 सत्ता का विरोध और क्रांतिकारी आवाज

उनकी कविता का मूल भाव बोध व्यवस्था के विरोध का भावबोध है जो धीरे–धीरे तल्खी में बदलता जाता है। यह राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था के विरुद्ध क्रांति की आवाज उठाता है और चेतावनी देता है –

लेकिन याद रखो
अन्याय और यातना की सीमा
जब पार हो जाती है
तो बेजान में ही सबसे पहले जान आती है।

'जंगल का दर्द' संकलन की कविताओं में वे अंधेरे के बर्फीले माहौल को विचारों की आग की रोशनी से चीरने के लिए आश्वस्त दिखाई देते हैं। यह आग आपातकाल के अंधेरे में काले तेंदुए को खदेड़ने के लिए लगाई गई है –

इतिहास के जंगल में
हर बार भेड़िया मॉद से निकाला जाएगा
आदमी साहस से एक होकर
मशाल लिए खड़ा होगा।

यहाँ वे निराला और माखनलाल चतुर्वेदी के क्रांतिकारी स्वर के बहुत निकट दिखाई देते हैं। धीरे–धीरे विद्रोह और बगावत का स्वर उनकी कविता का मूल स्वर बनता जाता है। अन्याय और शोषण की काली चट्टान पर बैठे सत्ता के काले तेंदुए को भारतीय जनता पहचानती है और कवि उसे प्रेरित करता है कि खुंखार तेंदुए से डरने की बजाए उसको खदेड़ने का प्रयास करो –

तेंदुआ गुर्राता है
तुम मशाल जलाओ
क्योंकि तेंदुआ गुर्रा तो सकता है
मशाल नहीं जला सकता।

कवि जन सामान्य को उसकी शक्ति का अहसास कराता है कि क्योंकि उसे आम आदमी की ताकत का बड़ा भरोसा है। वे जानते हैं कि आम आदमी की यह लड़ाई जारी रहेगी भले ही इसे शुरू करने वाला इसके परिणाम को न देख पाए। कवि सामान्य मनुष्य के साथ अपने को एकाकार कर देता है और उसकी अभिव्यक्ति की अनुभूति की प्रामाणिकता को स्वतः सिद्ध करती है। आम आदमी की व्यथा को व्यक्त करते हुए कहीं भी भाव का आरोप नहीं दिखाई देता, सहे हुए, झेले हुए अनुभव की अभिव्यक्ति करता है –

हल की तरह
कुदाल की तरह
या खुरपी की तरह
पकड़ भी लूँ कलम को
तो भी फसल काटने को
मिलेगी नहीं हमको
हम तो जमीन ही तैयार कर पाएँगे
क्रांति बीज बोने कुछ बिरले ही आएँगे
हरा–भरा वे ही करेंगे मेरे श्रम को
सिलसिला मिलेगा आगे मेरे क्रम को।

आगे आने वाली पीढ़ी के लिए क्रांति की जमीन तैयार करने का विश्वास और उनमें अपने श्रम और क्रम को सिलसिला मिलने का अहसास यह सिद्ध कर देता है कि सर्वेश्वर 'आस्था' के कवि हैं। जब वे कहते हैं कि 'नहीं–नहीं प्रभो / तुमसे शक्ति नहीं माँगूंगा' तो वहाँ जो मूल स्वर है वह अनास्था का न होकर आत्मविश्वास का है। अपने भीतर की शक्ति को पहचानने का प्रयास वहाँ स्पष्ट दिखाई देता है –

हर क्षण यह जान सकूँ क्या मुझको खोना है
कितना सुख पाना है, कितना दुख रोना है
अपने सुख–दुख की प्रभु
इतनी पहचान रहे

अन्याय और शोषण किसी भी स्तर का हो वे उसके विरुद्ध आवाज अवश्य उठाते हैं। यही कारण है कि 'कुआनो नदी' में वे महानगरों द्वारा गाँवों के शोषण के खिलाफ आवाज उठाते हैं और कुआनो नदी एक साधारण नदी न रहकर व्यापक अर्थ संकेत देने वाला प्रतीक बन जाती है। जन–क्रांति की शक्ति का विश्वास उभरता दिखाई देता है।

11.4.5 परम्परा और प्रयोग

इस इकाई के पिछले भागों में आप पढ़ चुके हैं कि सर्वेश्वर की कविता में भारतीय जीवन और समाज के यथार्थपरक सरोकार और ग्रामीण संवेदना की प्रधानता है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उनका कवि भारतीय काव्य और हिंदी कवियों की परंपरा से जुड़ा है। प्रश्न यह है कि वे किन कवियों की परंपरा को अपनाते हैं तथा कहाँ तक अपनाते हैं।

आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने साम्राज्यवादी शोषण के विरुद्ध बगावत की जो चिनगारी अपनी रचनाओं में उठाई वह आगे के रचनाकारों में दिए की लौ के रूप में जगी। जन–सामान्य की गरीबी, दीनता और दुर्दशा की ओर समाज का ध्यान दिलाने और उसे दूर करने के लिए कवि उद्वेलित हो उठा। बालकृष्ण शर्मा, नवीन, माखन लाल चतुर्वेदी, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', गजानन माधव मुक्तिबोध, केदारनाथ अग्रवाल आदि के काव्य में यही क्रांति का स्वर विद्यमान है। सर्वेश्वर की रचनात्मक प्रतिभा इसी क्रांतिकारी परंपरा से जीवंतता पाती है। किसान–मजदूर की पीड़ा, आम आदमी की हिम्मत और शक्ति में विश्वास उन्हें इसी विरासत से मिलता है।

यथार्थ पर विशेष आग्रह रखने की प्रवृत्ति के कारण उन्हें निराला और मुक्तिबोध की परंपरा का कवि कहा जा सकता है तो लोक–भाषा और लोक–संस्कार की पकड़ के कारण उन्हें कबीर, सूर और तुलसी की लोक–परंपरा से जोड़ा जा सकता है। निराला और मुक्तिबोध की विद्रोही परंपरा को उन्होंन काव्य के नए मुहावरे से आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया। यह नया मुहावरा सन् 1960 के बाद की कविता में काफी प्रख्यात हुआ और इसने आगे आने वाले काफी कवियों को प्रभावित किया। मुक्तिबोध के काव्यादर्श उनको चेतना को भीतर तक उद्वेलित करते हैं। 'कवि मुक्तिबोध के निधन पर' नामक उनकी कविता में वे इसे स्वीकार भी करते हैं –

तुम थे –
हम सब के अधिक तेजस रूप
अधिक प्रखर आकृति
तुम्हारा टूटना
हम सब के आकारों का टूटना है।

निराला और केदारनाथ अग्रवाल की कविता की उदात्तता और मैथिलीशरण गुप्त की कविता की स्पष्टता और सादगी दोनो ही उन्हें विरासत में मिली है। किन्तु परम्परा की इस विरासत को ग्रहण करने के साथ सर्वेश्वर नए प्रयोगों में विश्वास रखने वाले कवि है। लीक पर चलने की बजाए वे अपना रास्ता स्वयं बनाने में विश्वास रखते हैं। यही कारण है कि कथ्य, संवेदना, भाषा और शिल्प सभी के स्तर पर वे नए प्रयोग करते हैं और स्वातंत्र्योत्तर कविता में अपना ऐतिहासिक स्थान बनाते हैं। लोक जीवन के नए से नए चित्र उनकी कविता में मिलते हैं। इस संदर्भ में 'सुहागिन का गीत' 'गाँव की शाम का सफर', 'नए साल पर', 'कुआनो नदी', 'भजैनिया का पोखरा', 'बांस गाँव' आदि कविताएँ विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। इनमें प्रस्तुत ग्राम्य परिवेश का चित्रण किसी अतिरिक्त मोह के कारण नहीं है, बल्कि वहाँ के अभावों, तकलीफों को उजागर करने के लिए है। गाँव उनके मन में इतना गहरा बैठा है कि कविता में अचानक प्रकट हो जाता है। भारतीय जीवन और समाज का यथार्थ उनकी कविता के माध्यम से उभरकर सामने आता है। इस संवेदना को चित्रित करने का उनका ढंग भी बिल्कुल नया और अपना है। इसीलिए उनकी कविता में व्यंग्य का एक खास पेनापन मिलता है –

मेरे दोस्तो!
तुम मौत को नहीं पहचानते
चाहे वह आदमी की हो
या किसी देश की
चाहे वह समय की हो
या किसी वेश की।
सब कुछ धीरे–धीरे ही होता है
धीरे–धीरे ही बोतलें खाली होती हैं
गिलास भरता है,
हाँ, धीरे–धीरे ही
आत्मा खाली होती जाती है
आदमी मरता है

प्रकृति को आंकते समय भी सर्वेश्वर दयाल नए–से–नए चित्र प्रस्तुत करते हैं। कहीं नए उपमान प्रयोग करते हैं तो कहीं पुराने उपमानों में नए अर्थ भरते हैं। बिबों का नयापन उनकी कविता में हर जगह मिलता है चाहे प्रसंग राजनीति पर व्यंग्य का हो, छद्म बुद्धिजीवियों के ढोंग का। गांधी को सम्बोधित 'पंच धातु' नामक कविता का उदाहरण है –

मैं जानता हूँ
क्या हुआ तुम्हारी लंगोटी का
उत्सवों में अधिकारियों के
बिल्ले बनाने के काम आ गयी
x x x x
और तुम्हारी लाठी?
उसी को टेककर चल रही
एक बिगड़ी दिमाग डगमगाती सत्ता
x x x x

और घड़ी
देश के नब्ज की तरह बंद है।

भाषा और शिल्प के स्तर पर भी उनकी कविता प्रयोगों से भरी पड़ी है। लोक भाषा की शक्ति को उन्होंने पहचाना और उसे संप्रेषण का समर्थ माध्यम बनाया। लोक लयों और लोक छंदों का उन्होंने अपनी कविताओं में सार्थक उपयोग किया है। इतना ही नहीं, अपनी लंबी कविता 'कुआनो नदी' में उन्होंने प्रबंधात्मकता का पुराना ढाँचा तोड़ते हुए नया प्रबंधात्मक शिल्प विकसित किया है।

कथ्य और संवेदना के स्तर पर भी नयापन उनकी कविता में मिलता है। नीचे हम उनकी 'प्रार्थना' नामक कविता से उदाहरण दे रहे हैं। इसमें रचनाकार नयी अभिव्यक्ति संपदा तथा दृष्टि तो खोजता ही है साथ ही अपने दुखते, कसकते, तड़पते अनुभवों को वाणी देता है। पर ऐसा करते समय घुटने नहीं टेकता, समझौता नहीं करता। वह कहता है –

नहीं नहीं प्रभु तुमसे
शक्ति नहीं मागूँगा
अर्जित करूँगा उसे मर कर विखर कर
आज नहीं कल सही आऊँगा उबरकर
कुचल भी गया तो लज्जा किस बात की
रोदूंगा पहाड़ गिरता
शरण नहीं माँगूंगा
नहीं नहीं प्रभु तुमसे
शक्ति नहीं माँगूंगा

ईश्वर के सामने घुटने न टेकने की यह बात दंभ न होकर आत्मविश्वास और मनुष्य की श्रम शक्ति का प्रतीक है। उसमें मध्ययुगीन दैन्य के स्थान पर आत्मबल की दृढ़ता है जो मानवीय

गरिमा की सूचक है। ईश्वर के साथ ही यह 'प्रभु' संबोधन समाज के मठाधीशों और प्रभुत्ता सम्पन्न वर्ग के लिए भी प्रयुक्त है जिनसे कवि न तो समझौता करना चाहता है और न ही उनकी दया पर जीना चाहता है।

11.4.6 विचारधारा और प्रभाव

सर्वेश्वर की कविता में राजनीतिक पाखंड, ढोंग और भ्रष्ट व्यवस्था और आज की विसंगतियाँ का चित्रण तो मिलता है किन्तु किसी दल विशेष के मतवाद के प्रति प्रतिबद्धता नहीं मिलती। जाने–अनजाने तौर पर वे राममनोहर लोहिया और जयप्रकाश नारायण की समाजवादी विचारधारा से प्रभावित हैं। वे मानते हैं कि लोहिया के नए क्रांतिकारी विचारों ने युवा–मानस को नए चिंतन की मशाल दी। उनकी कविता 'लोहिया के न रहने पर' इस दृष्टि से उल्लेखनीय है।

विचारधारा के स्तर पर लोहिया से प्रभावित होने पर भी गांधी और मार्क्स दोनों के प्रति उनके मन में प्रबल आकर्षण था। गांधी की निमर्म हत्या और उसके बाद उनके आदर्शों के अनुसरण के नाम पर हो रहे ढोंग के प्रति वे सचेत हैं। उनके राजनीतिक झुकाव उनकी कविता को विचार की ऊर्जा तो प्रदान करते हैं किन्तु उनके सृजन की भीतरी शक्ति नहीं बनते। इसलिए वे कभी किसी विचारधारा विशेष के प्रचारक नहीं बनते। विसंगतियों और विद्रूप के चित्रण की सम्पन्नता के कारण उन पर पश्चिम के अस्तित्ववाद और अनास्थावाद का प्रभाव भी बताया जाता है। किन्तु 'लीक पर वे चलें' तथा 'गर्म हवाएँ' संकलन की 'प्रार्थना 1, 2, 3' आदि कविताएँ या ऐसी अन्य कविताएँ स्पष्ट रूप से सिद्ध करती हैं कि सर्वेश्वर आस्था के कवि हैं। इसलिए सर्वेश्वर को किसी एक विचारधारा का कवि न कह कर प्रगतिशील सामाजिक विचारधाराओं का कवि कहा जाना चाहिए।

जहाँ तक साहित्यकारों के प्रभाव का सवाल है सर्वेश्वर अज्ञेय के काफी निकट रहे। किन्तु उनकी काव्य दृष्टि को स्वीकार नहीं किया। काव्य दृष्टि के लिहाज से वह मुक्तिबोध के ज्यादा निकट हैं। मुक्तिबोध के सृजन कर्म में सर्वेश्वर की आस्था और उनकी राह पर चलने के संकेत हमें उनकी 'मुक्तिबोध के निधन पर' नामक कविता में स्पष्ट देखने को मिलते हैं –

> 'तुम्हारी मृत्यु में
> प्रतिबिंबित है
> हम सब की मृत्यु
> कवि कहीं अकेला मरता है।
> x x x x
> तुम्हारे हाथों से जड़े हैं असंख्य हाथ
> वे निष्प्राण कैसे हो सकते हैं।
> बनी–बनायी लीकों पर न चलने वाले की
> यात्रा का अंत
> पूर्ण विराम में कहाँ होता है।
> x x x x
> नहीं नहीं

जीवित हैं हम सब अभी भी
और हम सब में जीवित हो तुम
ये लहरें जाने कहाँ से आती हैं
जो हमारी पसलियों पर
अपने को तोड़ती चली जाती हैं
हमें निरंतर गढ़ती जाती हैं।

11.4.7 व्यंग्य वक्रोक्ति की ओर रुझान

समसापयिक यथार्थ की विद्रूपताओं को उभारने के लिए सर्वेश्वर व्यंग्य और वक्रोक्ति को एक औजार के रूप में इस्तेमाल करते हैं। उनकी ज्यादातर कविताएँ व्यंग्यपरक हैं जिनमें आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक जीवन की विसंगतियों और विडंबनाओं पर तीखा प्रहार किया गया है। ढोंगी राजनीतिक नेता और नकलची बुद्धिजीवी देव पर व्यंग्य के दो उदाहरण –

(क) घंतमंत दुइ कौड़ी पावा
कौड़ी लै के दिल्ली आवा,
दिल्ली हम का चाकर कीन्ह
दिल दिमाग भूसा भर दीन्ह,
भूसा लै हम शेर बनावा,
ओह से एक दुकान चलावा,
देख दुकान सब किहिन प्रणाम
नेता बनेन कमाएन नाम

(ख) दूसरों के कपड़े पहनकर
सड़क पर मिले एक प्रोफेसर।
बोले :
जिस्म तो अपना है
कपड़े भी अपने हों
क्या जरूरी बात है?
उद्देश्य तो केवल
चाहिए होना आधुनिक
देखिए लगता हूँ न ठीक?

विदेशी विचारधारा को ओढ़कर आधुनिक और क्रांतिकारी कहलाने वाला यह वर्ग अपने भीतर से बिल्कुल खोखला और आत्म–सम्मान विहीन है। वस्तुतः यह बात भारतीय समाज और संस्कृति, विकास की प्रक्रिया और प्रगति सभी क्षेत्रों में इसी प्रकार लागू होती है। धर्म के नाम पर होने वाली बर्बरता और नृशंस हत्याओं पर भी कवि ने ऐसे ही पैने व्यंग्य किए हैं 'दंगों के बाद' नामक कविता से एक उदाहरण है –

ऐसा क्यों होता है?
कि धर्मग्रंथ छूकर भी
किसी आदमी के हाथ
जंगली जानवर के पंजे में बदल जाते हैं

जहरीले नाखून से वह
इंसान की सूरत नोचने लगता है,
और ईश्वर का नाम लेते ही
जीभ लपलपाने लगती है।
x x x x

मंत्रों और आयतों की जगह
दहाड़ सुनाई देती है

(वहशी दहाड़)

इन व्यंग्यों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें बात सहजता या कोमलता से कहने की बजाए धारदार ढंग से कही गयी है। सर्वेश्वर अपने इस लहजे के प्रति पूर्ण सचेत हैं। 'तीसरा सप्तक' के कवि वक्तव्य में उन्होंने कहा भी है – 'जब चारों ओर लोग इस बात पर कमर बाँधे हों कि वे आपकी बात नहीं समझेंगे तब आपके सामने दो ही रास्ते रह जाते हैं, या तो चुप रहें, अपनी बात न कहें या फिर उसे इस ढंग से कहें कि सुनने वाला तिलमिला उठे, उसकी कलई उतर जाय।' यही कारण है कि आम आदमी का दुख दर्द भी उनकी कविता में तीखे व्यंग्य के माध्यम से उभर कर आता है 'भुजैनियों का पोखरा' कविता से एक उदाहरण है –

भाड़ के सामने काली भूतनी–सी
आज भी वह बैठी है
पसीने से चिपचिपाती देह लिए
चुप खामोश,
एक–एक चने से अपना भाग्य जोड़ती
दुखती रगें तोड़ती
उसके अधनंगे बच्चे
भाड़ झोंकने के लिए
दिन भर सूखी पत्तियाँ बटोरते हैं
और शाम को मक्के की रोटी
और नरई का साग अगोरते हैं।

11.4.8 प्रकृति और जीवन दृष्टि

नयी कविता में प्रकृति की प्रस्तुति का स्वरूप बदला। छायावादी युग में प्रकृति को जिस कल्पनातिरेक और भावमय संसार के रूप में प्रस्तुत किया गया था उसे नयी कविता ने स्वीकार नहीं किया। नयी कविता के कवियों ने इसे आम आदमी की जागरूक संवेदना–शक्ति के साथ जिया और व्यक्त किया है। विशेष रूप से सर्वेश्वर की कविता में यह आम जीवन का जिया–भोगा प्रकृति का रूप ही अपनी भरपूर संप्रेष्यता के साथ व्यक्त हुआ है। इसलिए यहाँ प्रकृति किसी सुदूर कुतूहलपूर्ण रहस्यमयी सत्ता का नाम नहीं बल्कि दिनों–दिन जीवन में हमारे साथ चल रही वास्तविक स्थितियाँ और छवियाँ हैं। 'नये साल पर' कविता में कवि कहता है –

खेतों की मेड़ों पर
धूल भरे पाँव को

कुहरे में लिपटे उस छोटे से गाँव को
नये साल की शुभ कामनाएँ।

प्रकृति के विभिन्न उपादानों को भी एक विशेष गति, थिरकन और लय के साथ प्रस्तुत किया गया है–

वक्ष खोले डोलती अमराइयाँ
गर्व से आकाश थामे खड़े
ताड़ के ये पेड़,
हिलती क्षितिज की झालरें,
झूमती हर डाल पर बैठी,
फलों से मारती
खिलखिलाती शोख अल्हड़ हवा,
गायक–मंडली से थिरकते आते गगन में मेघ,
वाद्य यंत्रों से पड़े टीले।

यहाँ बनने वाले बिंबों में एक तरह का जाना–पहचानापन या निकटता का बोध होता है। दूसरी ओर प्रकृति के उन रूपों को भी अपने वास्तवपन में प्रस्तुत किया गया है जो मानवीय मन को सहलाते, गुदगुदाते नहीं बल्कि आम आदमी के लिए तबाही खड़ी कर देते हैं। 'कुआनो नदी' से कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं –

फिर बाढ़ आ गई होगी उस नदी में
पास का फुटहिया बाजार बह गया होगा
पेड़ की शाखाओं पर बँधे खटोले पर
बैठे होंगे बच्चे किसी काछी के
और नीचे कीचड़ में खड़ें होंगे चौपाए
पूंछ से मक्खियाँ उड़ाते।

(कुआनो नदी)

व्यंग्य–वक्रोक्ति के लिए प्रकृति का प्रतीकात्मक उपयोग बड़ी ही सुघड़ता और सफलता के साथ किया गया है।

(1) पानी चढ़ रहा है
खून खौल रहा है,
बहुत करीब आ गया है ?
खतरे का निशान

(कुआनो नदी)

(2) चट्टानों पर सो रहा है काला तेंदुआ
चट्टानों का रंग काला है
चट्टानों पर अंगड़ाई ले रहा है

काला तेंदुआ
चट्टानों का रंग बदल रहा है
x x x x

चट्टानों पर झिंझोड़ रहा है अपना शिकार
काला तेंदुआ
चट्टानें, चट्टानें नहीं रहीं
तेंदुआ में बदल गई हैं।
एक तेंदुआ
सारे जंगल को
काले तेंदुआ में बदल रहा है।

(जंगल का दर्द)

छायावादी कवि अपने व्यक्तित्व को सीधा प्रकट न करके उसे प्रकृति की रहस्यात्मक कुहेलिका के माध्यम से अभिव्यक्त करते थे। वे प्रकृति को ही सब कुछ मानते थे, उसी से सृजन प्रेरणा पाते थे। नयी कविता में यह दृष्टिकोण बदला। कवि ने प्रकृति से प्रेरणा तो पायी है किन्तु अपने कवि–व्यक्तित्व को समर्पित करके नहीं। प्रकृति के प्रति यह बदला हुआ दृष्टिकोण वस्तुतः जीवन–दृष्टि के बदलाव का परिणाम है। परंपरा स्वीकृत सोच पर प्रश्न चिह्न लगाने का परिणाम ही है कि सर्वेश्वर डार्विन के विकासवाद के सिद्धांत पर प्रश्न चिह्न लगाते हैं जिसके अनुसार बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती है –

ताकतवर ने सब खा लिया
कमजोर ने उच्छिष्ट से
संतोष कर, दर्द से मुँह छिपा लिया।

कवि इसी क्रम को तोड़ना चाहता है कि ताकतवर ही 'सब कुछ' खाता रहे। वह इस व्यवस्था को बदल कर नई व्यवस्था कायम करना चाहता है जिसमे गैर–बराबरी या छोटे–बड़े का फर्क कम हो सके। कवि व्यक्तिवादी भावों की बलि नहीं देता। कविता में परिवर्तनकारी नए विचारों की मशाल जलाता है। इसीलिए वह उत्पीड़ित जन सामान्य को क्रांति के लिए प्रोत्साहित करता है –

(1) 'ऐसी कोई जगह नहीं
जहाँ तुम पहुँच न सको
ऐसा कोई नहीं
जो तुम्हें रोक ले।'

(2) विपत्ति में
तुम अकेले नहीं हो
असंख्य सोते कुलबुलाते हैं
चट्टानों में
मिलकर धारा बनने को

इसे पहचानो
राह निकलेगी निश्चय।

बोध प्रश्न –2

1. 'हाँ' या 'नहीं' में उत्तर दीजिए।

   i) सर्वेश्वर की कविता ग्रामीण संवेदना की कविता है। हाँ / नहीं
   ii) उन्होंने विशिष्ट व्यक्तियों को ही अपने काव्य का विषय बनाया है। हाँ / नही
   iii) उनकी कविता में गाँवों की प्रगति और खुशहाली के चित्र हैं। हाँ / नही
   iv) उनकी कविता में मोहभंग से उत्पन्न अवसाद, पीड़ा और घुटन के चित्र मिलते हैं। हाँ / नही
   v) उन्होंने सत्ता के यशोगान की कविता लिखी है। हाँ / नही

बोध प्रश्न –3

1. सर्वेश्वर की कविता के केन्द्र में निम्नलिखित में से कौन है?
   क) बुद्धिजीवी
   ख) राष्ट्रीय नेता
   ग) आम आदमी
   घ) साहित्यकार वर्ग

2. उनकी कविता का स्वर –
   क) क्रांति की चेतना का है
   ख) समझौते का है
   ग) शांति की स्थापना का है

3. वे अपनी कविता में किस–किस स्तर पर नए प्रयोग करते हैं?

बोध प्रश्न –4

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें।

1. सर्वेश्वर पर किन राजनीतिक विचारधाराओं का प्रभाव माना जाता है?

   ....
   ....
   ....
   ....

2. सर्वेश्वर के व्यंग्य की दो विशेषताएँ बताइए।

   ....
   ....
   ....
   ....

3. प्रकृति के प्रति सर्वेश्वर के दृष्टिकोण की दो विशेषताएँ बताइए।

....

....

....

....

11.5 अभिव्यंजना शिल्प

11.5.1 काव्य रूप

सर्वेश्वर ने प्रमुख रूप से मुक्तक कविताएँ ही लिखी हैं। उनके काव्य–संकलनों की अधिकांश कविताएँ सीमित आकार की और अपने आप में पूर्ण हैं। लोक गीतों की तर्जपर भी उन्होंने कुछ कविताएँ लिखी हैं जैसे– 'झाड़ै रो महकुआ', 'गरीबा का गीत' आदि। तुकांत होने के साथ ही इन कविताओं में गेयता है। 'कुआनो नदी' का काव्य रूप उनकी अन्य कविताओं से भिन्न है। यह एक लंबी कविता है। लंबी कविता आधुनिक हिंदी काव्य का विशिष्ट काव्य रूप है। छायावाद युग में प्रसाद की 'प्रलय की छाया', पंत की 'परिवर्तन', निराला की 'राम की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' आदि लंबी कविताएँ लिखी गई हैं। नयी कविता के दौर में अज्ञेय की 'असाध्य वीणा', मुक्तिबोध की 'अंधेरे में', नरेश मेहता की 'समय देवता', सर्वेश्वर की 'कुआनो नदी' आदि लंबी कविताएँ लिखी गईं। ये कविताएँ केवल अपने आकार के लिए ही विशिष्ट नहीं है बल्कि शिल्पगत और विचारगत विशिष्टिता के कारण लंबी कविता को एक पृथक काव्यरूप माना गया है। हालाँकि छायावादी युग और नयी कविता युग की लंबी कविताओं का रचना विधान आयाम में पर्याप्त भिन्न है। एक बात निश्चित है कि लंबी कविता का अपना प्रबंधात्मक शिल्प होता है इस शिल्प का विधान परंपरागत प्रबंधात्मकता के पालन के लिए बाध्य नहीं होता। रचनाकार इसे अपनी जरूरत के अनुरूप गढ़ता है। सर्वेश्वर ने कुआनो नदी में पुराने प्रबंध शिल्प को छोड़ते हुए चिंतनात्मक प्रबंध शिल्प को अपनाया है। कविता तीन खंडों में रखी गई है– (1) कुआनो नदी, (2) कुआनो नदी के पार, (3) कुआनो नदी–खतरे का निशान। तीसरे खंड तक आते–आते कविता फैंटेसी, व्यंग्य–कथा, आत्म–कथन आदि कई शैलियों में आ जाती है। कविता में एक तरह का नाटकीय मोड़ आता है। नदी का पानी चढ़ना जन–क्रांति का प्रतीक बन जाता है।

11.5.2 काव्य–भाषा

कवि की संवेदना की संपूर्ण वाहक उसकी काव्य–भाषा होती है। उसके अनुभवों, भावों और विचारों को भाषा के माध्यम से अभिव्यक्ति मिलती है। इसीलिए काव्य–भाषा किसी भी कवि की संपूर्ण रचना प्रक्रिया को जानने का सर्वाधिक प्रामाणिक माध्यम होती है। नयी कविता जीवन के व्यापक संदर्भो को उजागर करने के लिए अपनी पूरी शक्ति के साथ सक्रिय रही है और यह कार्य उसने काव्य–भाषा के माध्यम से काफी हद तक किया है। सर्वेश्वर का रचना कर्म नयी कविता के समस्त काल में विस्तार तक फैला है और उसे दिशा देने में भी समर्थ हुआ है। अतः सर्वेश्वर की कविता का मुहावरा जानना नयी कविता के मुहावरे को समझने के लिए जरूरी है।

सर्वेश्वर ने परंपरागत काव्य–भाषा को स्वीकार नहीं किया क्योंकि वह उन्हें जन–जीवन के पर्याय की अनुभूतियों को वहन करने में समर्थ नहीं प्रतीत हुई। भाषा के पांडित्य या ऊपरी सजधज का बहिष्कार करते हुए उन्होंने आम बोलचाल की भाषा को अपनी काव्य–भाषा के रूप में अपनाया।

उनकी काव्य–भाषा शब्द, पदबंध और वाक्य विन्यास की जटिलता को दूर रखते हुए नित्यप्रति की जीती–जागती शब्दावली, लोक–लयों और लोक मुहावरों का जीवंत संसार बन गई। खेत–खलिहान, गली–मोहल्ले, चूल्हे–चौपाल से आयी यह भाषा सर्वेश्वर की कविता की मूल संवेदना–ग्रामीण संवेदना की प्रामाणिकता की पहचान है। लोक जीवन और लोकचित्त से उनका जुड़ाव उनकी भाषा में प्रत्यक्ष रूप से व्यक्त है। 'काठ की घंटियाँ' की आरंभिक कविताओं की भाषा पर जो भावुकता और रोमानीपन का दबाव था वह भी धीरे–धीरे भावों और विचारों की आँच में पक कर लोक संवेदना में बदलता गया है। आम आदमी के व्यक्तित्व और अस्तित्व को रोजमर्रा की जानी पहचानी अनुभूतियों और बिंबों के माध्यम से व्यक्त करती हुई उनकी भाषा में खीझ–रीझ, पीड़ा अवसाद और आंतरिक संघर्ष को तसल्ली तो मिलेगी किन्तु चमत्कार या शास्त्रीयता का कोई दबाव नहीं मिलेगा। इस दिशा में उनका दृष्टिकोण भवानी प्रसाद मिश्र से मिलता दिखाई देता है। भवानी प्रसाद मिश्र का कहना था –

जिस तरह हम बोलते हैं
उस तरह तू लिख
और उसके बाद भी
हमसे बड़ा तू दिख

यहाँ हम से बड़ा दिखने की बात का अर्थ है भाषा में अर्थ की गहनता होना, व्यंजनात्मकता होना। बालचाल की भाषा को जब कवि काव्य–भाषा के रूप में अपनाता है तो इसका मतलब यह नहीं होता कि वह 'सपाट बयानी' करता है। बल्कि इसका मतलब यह होता है कि बोलचाल की भाषा को स्पष्टता और सरलता तो कविता में होती ही है साथ ही उसमें अर्थ की विशिष्ट गहनता और व्यापकता भी होती है। उदाहरण के लिए इस इकाई में आगे आप एक कविता पढ़ रहे हैं –'धीरे–धीरे'। इस कविता में जीवन मूल्यों के विघटन की बात बड़ी ही सरल सहज किंतु व्यंजनाश्रित भाषा में कह दी गई है। इसी तरह का एक अन्य उदाहरण है –

कुछ इतना बड़ा न हो
जो मुझ से खड़ा न हो
सामने पहाड़ हो
लेकिन अड़ा न हो

('गर्म हवाएँ' प्रार्थना–3)

भाषा को वे कवि कर्म की ईमानदारी का प्रतीक और कवि संवेदना की पहचान या स्वरूप मानते हैं। 'छीनते आए है वे' नामक कविता में वे लिखते हैं –

एक गलत भाषा में
गलत बयान देने से
मर जाना बेहतर है
यही हमारी टेक है
और अब छीनने आए हैं वे
हम से – हमारी भाषा
यानी हम से हमारा रूप

जिसे हमारी भाषा ने गढ़ा है।

सर्वेश्वर की काव्य–भाषा में खड़ी बोली, अवधी और उर्दू का अच्छा मेल तो है ही आजकल की बोलचाल की भाषा की अंग्रेजी मिश्रित शब्दावली और उपमाएँ भी मौजूद हैं –

तुम
जिसके बालों में बनावटी कर्ल नहीं
जिसकी आँखों में न गहरी चटक शोखी है
थर्मामीटर के पारे से
चुपचाप जिसमें भावनाएँ चढ़ती–उतरती हैं
x x x x

आपरेशन थियेटर सी
जो हर काम करते हुए चुप है'

(तुम कहो)

भाषा की शक्ति को समझते हुए उसे सर्वेश्वर ने वैचारिक और रचनात्मक दोनों स्तरों पर सृजित किया।

11.5.3 बिंब और प्रतीक

सर्वेश्वर की काव्य–भाषा बिंब प्रधान काव्य–भाषा है। किंतु कविता में बिंबों को बहुतायत के कारण उन्हें रूपवादी कवि नहीं मान लिया जाना चाहिए। उनकी कविता में प्रतीकों और बिंबों की बहुतायत का कारण यह है कि नए अनुभवों और विचारों को पुराने प्रतीकों और बिंबों के माध्यम से कह पाना असंभव होता है। अतः बिंब उनकी कविता में चमत्कार की सृष्टि अथवा फैशन के लिए नहीं आए हैं बल्कि उसकी आंतरिक जरूरत के रूप में आए हैं। सामाजिक यथार्थ की विसंगतियों को प्रगट करने के लिए कवि ने भाषा का जो व्यंजनाश्रित और व्यंग्यात्मक प्रयोग किया है और ये बिंब सहज ही बन पड़े हैं। सामंती अत्याचार में भूख से पीड़ित दलित वर्ग का सहज चित्र इन पंक्तियों में है –

'एक ओर भूखी गौरेय्या
एक ओर नीला अजगर'

विभिन्न प्रकार के जीवनानुभवों से कवि यथार्थ को प्रस्तुत करता है और बिंब इसी पुनर्रचना की प्रक्रिया प्रधान अंग हैं। बिंब की यह प्रक्रिया भाषा की समूची प्रक्रिया में स्थान पा जाती है। प्रतीक और बिंब काव्य–भाषा की सृजनात्मक प्रक्रिया के अनिवार्य किंतु विशिष्ट तत्व होते हैं। सूक्ष्म अर्थ–छायाओं को बिंब में ढालने के लिए कवि अपने कुछ प्रतीक निर्धारित करता है। ये प्रतीक परंपरा स्वीकृत भी हो सकते हैं और कवि द्वारा निर्मित भी। नए प्रतीक भाषा में नयी अर्थवत्ता का संचार करते हैं। सर्वेश्वर की कविता में भेड़िया, तेंदुआ, गुबरैला, अजगर, साँप, बंदूक, संदूक, लालटेन, आदि बहु प्रयुक्त प्रतीक हैं। उनके अधिकांश प्रतीक प्रकृति और ग्रामीण

जीवन से आए हैं। शहरी जीवन के प्रतीकों का भी बहिष्कार नहीं है। जहाँ भी व्यंग्य–वक्रोक्ति के लिए जरूरत हुई है उनका खुल कर प्रयोग हुआ है।

नए प्रतीकों को सर्वेश्वर ने एक समृद्ध बिंब प्रक्रिया में रूपांतरित किया है। उनके अधिकांश बिंब काव्य–वक्रोक्ति के रूप में प्रकट हुए हैं और अपने प्रभाव की मार में काफी असरदार हैं जैसे आयात स्थिति पर अप्रत्यक्ष व्यंग्य के दो उदाहरण हैं –

(1) एक तेंदुआ
सारे जंगल को
काले तेंदुए में बदल रहा है

(2) अब मैं कवि नहीं
एक काला झंडा हूँ
तिरपन करोड़ भौहों के बीच मातम में
खड़ी है मेरी कविता

'चुपाई मारौ दुलहिन' नामक कविता में गरीब औरत के चित्र के माध्यम से प्रस्तुत सामाजिक व्यभिचार का, व्यवस्था के चरित्र की तस्वीर कवि की सफल बिंब सृष्टि की परिचायक है –

लाला के बाजार में
मिली दुअन्नी
पर वह भी निकली खोटी
दिन भर सोई
बीच बाजार में बैठ के रोई
साँझ को लौटी
ले खाली झौआ

इसी तरह 'धीरे–धीरे' नामक कविता में गिलास और बोतल के प्रतीकों के माध्यम से राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक मूल्यों के विघटन के बिंब बड़े ही कौशल के साथ प्रस्तुत किए गए हैं।

प्रकृति के साहचर्य के बिंबों में सर्वेश्वर की कविता में एक खास तरह की ताजगी मिलती है। तकलीफों की भीषण मार प्रकृति के परंपरागत प्रतीकों को भी नए रूप में रखने को प्रेरित करती है। वसंत और फूलों से लदी डालियाँ मात्र सुख ही नहीं प्रदान करतीं–

फूलों की भरी डाल
जिसको था पकड़ इतराता
फूल गिरी मुझ पर अजगर सी
ठंडी एक लपेट ने
मुझे आज फिर कसा
फिर वसंत ने मुझे डसा

लेकिन जहाँ कवि प्रकृति के सौंदर्य को आँकता है वहाँ बिंबों की एक खास तरह की ताजगी प्रस्तुत होती है–

आकाश का साफा बाँधकर
सूरज की चिलम खींचता
बैठा है पहाड़
घुटनों पर पड़ी है नदी चादर सी

बिंबों का यह नयापन छायावादी या प्रयोगवादी कविता के प्राकृतिक दृश्यों से बिल्कुल अलग अपनी छवि प्रस्तुत करता है। प्रतीकों के नए उपयोग और बिंबों की बहुतायत के बावजूद ध्यान रखने की बात है कि कवि उन्हें कभी सजावट के सामान या कौतुहल सृष्टि के औजार के रूप में इस्तेमाल नहीं करता क्योंकि उसका प्रमुख उद्देश्य संप्रेषणीय भाषा में कविता लिखना है। यह बात कविताएँ तो स्पष्ट करती ही हैं, स्वयं कवि भी इस ओर सचेत है। इसका प्रमाण निम्नलिखित पंक्तियाँ है –

बिंब और प्रतीक को
मारिए गोली
बोलिए मेरे साथ
खड़ी फर्रुखाबादी बोली

(गर्म हवाएँ)

11.5.4 नवीन उपमान योजना

सर्वेश्वर के काव्य का सर्वाधिक समृद्ध पक्ष है उनकी नूतन उपमान योजना। इस उपमान योजना ने कवि की दृष्टिगत नवीनता को उजागर करने की एक पद्धति ही विकसित कर ली है। छायावाद का कवि अमूर्त उपमानों से काम चला लेता था। लेकिन परंपरागत उपमान प्रणाली उसे पसंद न थी। प्रगतिवाद और प्रयोगवाद में भाव को स्पष्ट करने के लिए मूर्त उपमानों की ओर झुकाव बढ़ा। इस झुकाव के मूल में जटिल यथार्थ के संप्रेषण की समस्या भी थी। सर्वेश्वर ने आरंभ में ही विषयवस्तु के स्तर पर बदलती हुई काव्य भूमि को नवीन संवेदना से ग्रहण किया। उसी के भीतर से नवीन उपमानों और बिंबों को वे रचने लगे। प्राकृतिक परिवेश और परिचित वस्तुओं के प्रति भी उनका दृष्टिकोण बदल गया और वे नयी कविता के काव्य मुहावरे में काव्य–बिंब और काव्य–मूल्य के स्तर पर संघर्ष करने लगे। सर्वेश्वर ने अनुभव किया कि परंपरागत उपमान निरंतर प्रयोग के कारण इतने घिस गए हैं कि नयी अर्थ दीप्ति उनसे पैदा नहीं की जा सकती। फलतः नवीन सौंदर्य चेतना के अनुरूप नए उपमानों की खोज की। इस खोज का उनकी उपमान योजना में विशेष महत्त्व है। एक उदाहरण है –

मन मेरा
स्मृति के कब्जे पर
कसे हुए खिड़की के पल्ले सा
खुलता, बंद होता रहा,
छड़ और दीवार के बीच
सिर पटकता रोता रहा।

'रात भर' शीर्षक इस कविता में कवि ने अमूर्त दर्द को मूर्त स्थिति और उपमान से संप्रेषित किया है। अर्थ व्यापार अधिक प्रभावी इसलिए है कि खिड़की के खुलने और बंद होने में एक मानवीय हलचल है जिसे वह सिर पटकता रहा के संकेतों से व्यक्त करता है। 'स्मृति के कब्ज़े पर कसा हुआ खिड़की के पल्ले सा' एक ऐसा उपमान है जो इससे पूर्व हिंदी कविता में नहीं मिलता। सर्वेश्वर मनोरोगों, मनःस्थितियों, आघातों और तनावों के लिए जिन नई स्थितियों को सामने लाते हैं उनमें कई बार विद्रूप उपमान भी होते हैं जैसे –

मैं तुम्हारे पीले होठों की
दम तोड़ती हुई गर्मी का कफन ओढ़कर
सदा के लिए सो सकता हूँ।

(एक प्यासी आत्मा का गीत)

'पीले ओठ', 'दम तोड़ती गर्मी' और उनमें 'कफन ओढ़कर सोने की प्रक्रिया' विरोधाभास की स्थिति का सीधा उपमान है। ओठों का ठंडापन और हरकत रहित स्थिति की विडंबना का उपमान कफन के अतिरिक्त हो भी क्या सकता है। सर्वेश्वर ऐसी ही स्थितियों के लिए कल्पना को तार्किक ढंग से सक्रिय भी करते हैं उनकी प्रसिद्ध काव्य–पंक्तियों की उपमान योजना दृष्टव्य है –

जिंदगी मरा हुआ चूहा नहीं है
जिसे मुख में दबाए
बिल्ली की तरह हर शाम गुजर जाए
और मुंडेर पर कुछ खून के दाग छोड़ जाए।

(यह खिड़की)

जिन्दगी की विशालता और निरंतरता को कवि व्यंजना के संकेत से सामने लाता है। मरा हुआ चूहा जिंदगी का पर्याय नहीं हो सकता और न शाम चूहे को बिल्ली की तरह मुँह में दबाए गुजर सकती है। तर्क यह है कि जिंदगी अपनी मूल गति में इतिहास चक्र को रचती है। इसलिए बिल्ली की तरह शाम का उपमान पूरी स्थिति की विडंबना पर व्यंग्य करता है। इस उपमान से नया बिंब सामने आया है। इस विचार श्रृंखला का सारांश यह है कि सर्वेश्वर के बिंब विधान में ताजगी और नवीनता नवीन उपमानों ने पैदा की है। इतना ही नहीं इन नवीन उपमानों में उनके काव्य–शिल्प का, काव्य–भाषा की सर्जनात्मकता का विकास किया है। इन उपमानों में बुद्धि का चमत्कार कम आधुनिक वैचारिक युग की प्रेरणा अधिक है। नयी कविता में कल्पना का जिस ढंग से बदलाव हुआ सर्वेश्वर की उपमान योजना उसी का साक्ष्य प्रस्तुत करती है।

11.5.5 छंद और लय

लीक को छोड़कर अनिर्मित पंथ पर चलने वाले कवि सर्वेश्वर कविता में छंद को लेकर भी काफी प्रयोगधर्मी हैं। यों तो छायावाद के जमाने से 'छंद के बंध' खुल गए थे, फिर भी कविता में पुराने अनुशासन को न मानते हुए भी छंद का नया अनुशासन स्थापित किया गया था। प्रयोगवाद और नयी कविता के कवियों के इस दिशा में और भी छूट ली।

शब्द की लय के स्थान पर अर्थ की लय पर जोर दिया जाने लगा। कविता तुकांत हो अथवा अतुकांत यह महत्वपूर्ण नहीं था। महत्वपूर्ण यह माना गया कि उसमें अर्थ की कितनी गहनता और व्यापकता है। यह जरूरी नहीं था कि कानों को बहुत मधुर लगे। जरूरी यह था कि वह अपने अर्थ को संप्रेषणीय बनाए और पाठक पर वांछित प्रभाव डाले।

उसकी संवेदना को तीर की तरह चीरता गुजर जाए। सर्वेश्वर की कविता में छंदों का पारंपरिक ढाँचा नहीं अपनाया गया है। गद्य की आवेग सर्जित लय को अपनाता हुआ कवि अर्थ की लय से कविता में नाद–सौंदर्य पैदा करता है। मुक्त छंद के प्रयोग में सर्वेश्वर निराला की परंपरा में दिखाई देते हैं। ग्रामीण संवेदना और लोक भाषा के साथ उनकी कविता में लोक छंदों और लोक लयों का भी समावेश हुआ है। लोक गीतों की तर्ज पर उन्होंने 'सुहागिन का गीत' 'गरीबा का गीत'। 'झाड़ै रौ महकुआ', 'चरवाहों का युगल गीत' आदि कविताएँ लिखी हैं।

बोध प्रश्न–5

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दें।

1. 'कुआनो नदी' का काव्य रूप क्या है?

   ....
   ....
   ....
   ....

2. नीचे दिए गए कथनों पर सही (√) या गलत (X) का निशान लगाएँ।
   सर्वेश्वर की काव्य भाषा –
   क) दुरुह है।
   ख) बोलचाल की है।
   ग) व्यंग्यात्मक है।
   घ) बिंब प्रधान है।
   ङ) अस्पष्ट है।
   च) पंडिताऊ है।
   छ) लोक भाषा है।

3. उनकी काव्य–भाषा में किन बोलियों और भाषाओं का मेल है?

   ....
   ....
   ....
   ....

4. सर्वेश्वर द्वारा बहु–प्रयुक्त चार प्रतीक बताइए।

   ....
   ....

....

....

5. ‘धीरे–धीरे’ नामक कविता में किन चीजों को प्रतीक के रूप में लिया गया है?

....

....

....

....

6. सर्वेश्वर के छंद विधान में उनकी ग्रामीण संवेदना किस तरह प्रकट हुई है?

....

....

....

....

11.6 सारांश

सन् 1960 के बाद की हिंदी कविता में सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का नाम कई दृष्टियों से बहुत ही महत्वपूर्ण है। हिंदी कविता को भारतीय जीवन और समाज के यथार्थ और ज्वलंत समस्याओं से जोड़ने का काम यों तो भारतेंदु युग से ही शुरू हो गया था और हर युग के रचनाकार इसे अपनी विशिष्ट क्षमताओं और प्रवृत्तियों के अनुरूप एक महत्वपूर्ण दायित्व के रूप में निभाते आ रहे थे। फिर भी, चालीस के दशक और उसके बाद की कविता पर विदेशी प्रभाव और अनुकरण का आरोप लगाया जाने लगा था। सर्वेश्वर ने हिंदी कविता में निराला और मुक्तिबोध की परंपरा को आगे बढ़ाने का प्रयास किया। कविता को आम आदमी – किसान–मजदूर की पीड़ा से जोड़ते हुए उसके लिए जिम्मेदार व्यवस्था पर कटु–तिक्त व्यंग्य किए। काव्य बिंबों की सामाजिकता, भाषा की लोक संवेदना, व्यंजनाधर्मी प्रतीक विधान, बिंब विधान की नवीनता, लोक छंदों और लयों की स्वीकृति के माध्यम से उन्होंने नयी कविता में सशक्त व्यंग्य काव्य की सृष्टि की, जो अपने आप में तो पर्याप्त महत्वपूर्ण है ही इस दृष्टि से भी काफी महत्वपूर्ण है कि इसने समसामयिक और अगली पीढ़ी के हिंदी कवियों को तेजी से प्रभावित किया। धुमिल, मलयज, लीलाधर जगूड़ी आदि समकालीन कवियों पर सर्वेश्वर का प्रभाव काव्य और शिल्प दोनों स्तर पर काफी स्पष्ट और गहरा है।

समसामयिक कविता पर उनकी कविता के प्रभाव का साक्ष्य देते हुए डॉ. जगदीश गुप्त ने लिखा है – ‘सर्वेश्वर उन कवियों में सर्वप्रमुख हैं जिनकी कविताओं ने छठे दशक के आरंभ में ही मुझे ‘नयी कविता’ की शक्ति–सामर्थ्य के प्रति गहराई से आश्वस्त किया था। जो विश्वास आधुनिक युग–बोध से युक्त उनकी सच्ची और मार्मिक अभिव्यक्ति ने मुझे उस समय और बाद में दिया, उसके सहारे मैंने निर्भीक हो कर नयी कविता की लड़ाई लड़ी जिसका फल भला–बुरा जैसा भी माना जाए सामने है। x x x इस दृष्टि से सर्वेश्वर के कृतित्व का नयी हिंदी कविता के संदर्भ में ऐतिहासिक महत्व माना जाएगा, इसमें संदेह नहीं।’ (नयी कविता : स्वरूप और समस्याएँ, पृ. 271)

उनके सृजन कर्म ने सन् 1960 के बाद की हिंदी कविता को नया काव्य मुहावरा दिया है। नयी कविता को विलायती नकल मात्र कहकर खारिज कर देने वालों की बात सर्वेश्वर की कविता ने बेमाने सिद्ध कर दी। उनकी काव्य–संवेदना को नयी कविता के विरोधियों के विरुद्ध अस्त्र के रूप में खड़ा किया गया।

सर्वेश्वर में परिवेशगत सजगता अपने समकालीन कवियों से अधिक है, ढोंग और अविश्वास को वे पहचानते हैं और वैविध्यमयी प्रतीकों द्वारा व्यक्त करते हैं। स्थिति की अराजकता और बेढंगा सत्तावाद 'जंगल का दर्द' बन जाता है तो 'कुआनो नदी' का मुर्दाघाट–पाट दिल्ली की सड़कों तक फैला दिखाई देता है। वे स्थिति के बदलाव के लिए तुरंत प्रयास करने की प्रेरणा देते हैं। उनके चिंतन पर लोहिया का प्रभाव है – इसी से वे 'इंतजार' और 'धीरे–धीरे' जैसे शब्दों से 'सख्त–नफरत' करते हैं। उनके आरंभिक काव्य में अज्ञेय और धर्मवीर भारती जैसा रोमानी भाव–बोध मिलता है किंतु जीवन जगत की विषमताओं की टकराहट जल्दी ही इसे चूर कर देती है और यथार्थ का दबाव प्रबल हो जाता है। सर्वेश्वर के काव्य पर विचार करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है –'बच्चे जिस तरह सपने देखते हैं, यथार्थ संसार को जिस तरह सपने में मिला देते हैं, वैसे ही कल्पना सर्वेश्वर दयाल की अनेक कविताओं में है। यह यथार्थ को मोहक आवरण से ढकने वाली कल्पना नहीं है, यथार्थ से खेलने वाली, उसे सर के बल उलट कर देखने वाली, काव्य के लिए सार्थक कल्पना है।' (नयी कविता और अस्तित्ववाद, पृ. 68)

11.7 शब्दावली

विद्रूपता : भोंडा, बेढंगा।
आत्म–निर्वासन : पश्चिम के 'alienation' शब्द का अनुवाद श्रम के पराएपन से प्रायः आत्म–निर्वासन पैदा होता है। आत्म–निर्वासन व्यक्ति को भीतर से तोड़ देने वाला अकेलापन है जो ऊब और त्रास को जन्म देता है।
भदेस : भोंडा, बेढंगा।
अर्थच्छाया : काव्यशास्त्र में उसे व्यंजना शब्द शक्ति कहा जाता है। इसका अर्थ है अनेकार्थता।
श्रम का परायापन : मार्क्सवादी चिंतन का शब्द। पूंजीवादी व्यवस्था का एक दुखद पहलू कि इस व्यवस्था में श्रमिक जो श्रम करता है उसका लाभ मालिक को मिलता है। जब श्रमिक में यह भावना पैदा हो जाती है तो यह परायापन या तो विद्रोह में फूटता है या आत्महंता स्थिति अपनाता है।

11.8 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

अभ्यास 1
देखें भाग 11.2

बोध प्रश्न 1
1) तीसरा सप्तक
2) काठ की घंटियाँ

3) उपन्यास, नाटक, बाल साहित्य, पत्रकारिता
4) खूटियों पर टंगे लोग

बोध प्रश्न 2

i) हाँ ii) नहीं iii) नहीं iv) हाँ v) नहीं

बोध प्रश्न 3

i) ग ii) क

iii) निराला, मुक्तिबोध, माखनलाल चतुर्वेदी, केदारनाथ अग्रवाल, कथ्य, भाषा, छंद, बिंब आदि।

बोध प्रश्न 4

1. लोहिया की समाजवादी विचारधारा, गांधीवाद और मार्क्सवाद
2. i) सामाजिक–राजनीतिक व्यंग्य है।
   ii) व्यंग्य बहुत तीखे और चुभने वाले हैं।
3. i) प्रकृति के प्रति पारंपरिक दृष्टिकोण रखने की बजाए उसे दैनिक जीवन के संदर्भ में देखते हैं।
   ii) प्रकृति के नए और जीवंत बिंब प्रस्तुत करते हैं।

बोध प्रश्न 5

1. लंबी कविता
2. क) x ख) √ ग) √ घ) √ ङ) x च) x छ) √
3. खड़ी बोली, अवधी और उर्दू
4. तेंदुआ, गुबरैला, बंदूक, साँप
5. बोतल, गिलास और मौत
6. लोक लयों और लोक गीतों की तर्ज में।

11.9 उपयोगी पुस्तकें

डॉ. जगदीश गुप्त :**नयी कविता : स्वरूप और समस्याएँ**, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली। डॉ. विश्वनाथ **प्रसाद तिवारी :समकालीन हिंदी कविता,** राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल :**सर्वेश्वर और उनकी कविता**, लिपि प्रकाशन, दिल्ली।

श्री गिरिजा कुमार माथुर :**नयी कविता : सीमाएँ और संभावनाएँ**, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली।

इकाई 12 : केदारनाथ सिंह

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्‌देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 केदारनाथ सिंह और उनकी काव्य परिधि
12.3 आमजन के संघर्ष को वाणी
12.4 संवेदनाओं का पुनराविष्कार
12.5 उम्मीद के कवि
12.6 कविता और लोकतंत्र
12.7 संघर्षशील जीवन का चित्रण
12.8 मातृभाषाओं की पक्षधरता
12.9 'बाघ' और हमारा समय
12.10 भाषा और काव्यात्मकता
12.11 सारांश

12.0 उद्‌देश्य

यह इस पाठ्यक्रम की बारहवीं इकाई है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- समकालीन कविता में केदारनाथ सिंह की अवस्थिति से परिचित हों सकेंगी/सकेंगे;
- केदारनाथ सिंह की कविता में लोक की उपस्थिति को समझ सकेंगी/सकेंगे;
- केदारनाथ सिंह के भाषा संबंधी दृष्टिकोण से परिचित हो सकेंगी/सकेंगे;
- केदारनाथ सिंह की कविताओं में उपस्थित राजनीतिक चेतना को समझ सकेंगी/सकेंगे;
- केदारनाथ सिंह की कविताओं में निहित वंचना के विरोध और शोषितों के प्रति पक्षधरता को रेखांकित कर सकेंगे/सकेंगी;
- जातिरहित समाज की संकल्पना को समझ सकेंगे/सकेंगी और
- केदारनाथ सिंह की कवितओं में विन्यस्त उम्मीद के रसायन को समझ सकेंगी/सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

केदारनाथ सिंह स्वाधीनता के बाद की हिंदी कविता के सर्वाधिक लोकप्रिय और महत्वपूर्ण कवियों में एक हैं। उन्होंने अपने कवि जीवन का आरंभ एक गीतकार के रूप में किया था। आज भी उनके गीतों को गीत विधा में नवोन्मेष करने के कारण याद किया जाता है। सच्चिदानंद हीरानंद वात्सयायन अज्ञेय ने 'तीसरा सप्तक' में उनकी कविताओं के साथ उनके गीतों को भी महत्व देकर संकलित किया है। तीसरा सप्तक के बाद उनका संग्रह 'अभी बिल्कुल अभी' प्रकाशित हुआ। जिसका हिंदी समाज ने व्यापक स्वागत किया था। 'अभी बिल्कुल अभी' के बीस वर्ष बाद केदारनाथ सिंह का दूसरा संग्रह 'जमीन पक रही है' प्रकाशित हुआ। इस संग्रह ने केदार जी को हिंदी कविता में पूरी तरह प्रतिष्ठित कर दिया। इसके बाद उनके प्रकाशित संग्रह हैं – यहां से

देखो, अकाल में सारस, उत्तर कबीर और अन्य कविताएं, बाघ, टॉलस्टाय और साइकिल, सृष्टि पर पहरा; और मतदान केन्द्र पर झपकी।

केदारनाथ सिंह की कविताओं ने हिंदी कविता का मुहावरा बदल दिया। नए कवियों पर उनकी कविता का गहरा प्रभाव है। उन्होंने राजनीतिक चेतना की उल्लेखनीय कविताएं लिखीं लेकिन उनकी कविताओं में कहीं भी नारेबाजी नहीं है। उनकी कविताएं इस बात का प्रमाण हैं कि उन्होंने चेतना संपन्न और मन–मस्तिष्क का विरेचन करने वाली कविताएं लिखी हैं। यह कहना आवश्यक है कि केदारनाथ सिंह हिंदी के अनिवार्य कवि हैं।

12.2 केदारनाथ सिंह और उनकी काव्य परिधि

केदारनाथ सिंह ने कवियों की कई पीढ़ियों को प्रभावित और संस्कारित किया। वे असंदिग्ध–प्रतिबद्धता के कवि थे। यह अकारण नहीं है कि वे बहुत से नए कवियों के प्रिय कवि हैं। एक ऐसे कालखण्ड में जबकि समकालीन हिन्दी कविता में काव्य तत्व और जीवन की गझिन समझ का लोप हो रहा है, तब केदार जी की कविताओं से गुजरना जीवन और समाज के कई–कई कोनों से गुजरने जैसा है। यहाँ कविता आत्मा की लय पाना चाहती है और आत्मा की लय कविता में सीझ गई है। वैसे केदार जी की कविता में यह एकाएक नहीं हुआ है। यह सब लगभग आरंभ से है। यदि उनके विषय में आलोचक यह कहते हैं कि 'केदारनाथ सिंह शायद हिन्दी के समकालीन काव्य–परिदृश्य में अकेले ऐसे कवि हैं जो एक साथ गाँव के भी कवि हैं और शहर के भी' तो उचित ही कहते हैं। यहाँ तीसरे सप्तक में छपी गीत रचना 'आना जी बादल जरूर' या बाद की 'जमीन' या 'पानी में घिरे लोग' या 'महानगर में कवि' के साथ 1978 की कविता 'जो एक स्त्री को जानता है' से लेकर 'टॉलस्टाय और सायकिल' में संकलित कविता 'दिल्ली में बबूल' की याद स्वाभाविक ढंग से आ सकती है। साठ वर्षों से अधिक के काव्य जीवन में केदार जी 1956–57 में भी सबसे अलग और नए माने गए थे और 2018 में भी (जबकि भौतिक रूप से वे हमारे बीच नहीं हैं) वे अन्यों से अलग, विशिष्ट और नए हैं। कई–कई अर्थों में विशिष्ट और नए। बहुतों को उनकी कविताएं धड़कन जैसी लगती हैं। बहुतों को लगता है कि वे जो कहना चाहते थे उसे सर्वोत्तम ढंग से उनके समय के सबसे जीवन्त कवि ने कह दिया। जैसे यह दोहा ही –

कलम छोड़ दो मेज़ पर, काग़ज़ रख दो द्वार
सारी दुनिया जा रही, कवि जी चलो बज़ार।

यहाँ केदार जी के ही प्रिय महाकवि मिर्ज़ा ग़ालिब की याद आती है। बाज़ार को लेकर जो विडम्बनाबोध ग़ालिब के वहाँ है, वह डेढ़ सौ वर्षों बाद और अधिक तीक्ष्णता के साथ केदार जी के वहाँ दिखता है। यहाँ तुलनात्मक अध्ययन का कोई मकसद नहीं है। कहना बस यह है कि केदार जी ने बार–बार यह सिद्ध किया है कि वे छन्द में भी समकालीन भाव बोध को समर्थ ढंग से अभिव्यक्त करने वाले कवि हैं। उनका एक और दोहा देखिए–

श्रोता कबके उठ गए, पाठक चले विदेश
कवि जी आओ घर चलें, रैन भई एहि देश।

आज के समय और समय की संवेदनशीलता पर इससे मार्मिक और धारदार कविता इधर के वर्षों में नहीं लिखी गई है। यह केदार जी ही हैं जो देख रहे हैं कि 'बोलियाँ अवाक हो रही हैं' और 'शब्द उड़े जा रहे हैं'। इन्हें बलपूर्वक पकड़ने की आवश्यकता है वरना अस्मिता खतरे में पड़ जाएगी। तब कुछ भी काम नहीं आएगा। चिल्लाने के लिए भी अपनी भाषा और उसकी त्वरा

चाहिए। यह आकारण नहीं है कि भारत के सबसे आधुनिक माने जाने वाले ज्ञान के प्रतीक जे.एन.यू. में हिन्दी की स्थिति पर कविता लिखे बिना वे नहीं रह पाते। इस कविता में उनका दुःख अपने समय के दुःख में घुलकर एक बड़े सांस्कृतिक प्रश्न का रूप धारण करता है। ज्ञान के सर्वथा आधुनिक केन्द्रों में आम आदमी (जिसके कंधे पर अंगोछा हो और हाथ में गठरी) का प्रवेश वर्जित है। यदि वह प्रवेश कर गया तो हास्यास्पद हो जाएगा। उसकी भाषा चिल्ला उठेगी। केदार जी लिखते हैं–

> और यह तो मैंने बाद में जाना
> उसके चले जाने के काफी देर बाद
> कि जिस समय में चिल्ला रहा था
> असल में मैं चुप था
> जैसे सब चुप थे
> और मेरी जगह यह मेरी हिन्दी थी
> जो भरे परिसर में
> अकेली चिल्ला रही थी।

कहना न होगा कि समय रहते जाग जाने में ही भलाई हैं वरना ऊँट किस करवट बैठेगा, यह अनुमान मुश्किल नहीं है।

केदार जी की एक कविता है 'बर्लिन की टूटी दीवार को देखकर'। अद्‌भुत कविता। बातचीत के सबसे आत्मीय शिल्प में। कविता बर्लिन में शुरू होती है लेकिन उसकी आत्मा इसी भारतीय उपमहाद्वीप में है। यह अकारण तो नहीं कि कविता में अहमद फराज़ अपनी ग़ज़ल का एक मिसरा भूल जाते हैं और कवि को महसूस होता है–

> पिछले शेर और अगले के बीच का
> एक अजब सा सन्नाटा
> भर गया है कमरे में
> पर मुझे लगता है मेरे भीतर की वह पागल स्त्री
> अब एक दीवार के आगे खड़ी है
> और चीख रही है–'यह दीवार ....
> आखिर यह दीवार
> कब टूटेगी?'

इतना ही नहीं, कवि आगे कहना नहीं भूलता–

> इतने बरस हुए
> ग़ज़लों से भरे इस उपमहाद्वीप में
> मुझे एक भूले हुए मिसरे का अब भी इन्तजार है।

कहना न होगा कि यह इन्तजार बहुतों को है। उनको भी जिन्होंने अहमद फराज़ की ग़ज़ल नहीं सुनी है। बहुतों के भीतर वह पागल स्त्री चीख रही है।

बाज़ार आज के विश्व का यथार्थ बन चुका है। उससे मुँह मोड़ना संभव नहीं दिखता। दो–दो हाथ तो करना ही होगा। यह सकारण है कि केदार जी की कविताओं में बाज़ार बार–बार आता है क्योंकि वह मनुष्य के जीवन में हर पल उपस्थित रह रहा है। फिर कवि से कैसे छूटेगा! पीछे उद्धृत दोहे में भी बाज़ार था और 'अपनी ख़बर' में भी वह है। यह और बात है कि यहाँ कविता और बाज़ार की टक्कर भी है–

जाना था बाज़ार
मोमबत्ती की रोशनी में
मैं लिखता रहा कविता
क्योंकि सारे हिन्दुस्तान में
बिजली गुल थी
अब यह कैसे बताऊँ
लेकिन छिपाऊँ भी तो क्यों
कविता और बाज़ार की एक हल्की–सी भी टक्कर
रोमांचित करती है मुझे।

यह है केदारनाथ सिंह की काव्य–कला। कविता सीधे हृदय में उतर जाए। केदार जी कविता में निबंध नहीं लिखते। कभी नहीं लिखा। ऐसा वे लोग करते हैं, जिन्हें अपनी कविता और कला पर भरोसा नहीं होता। केदार जी साफ–साफ कहते हैं–

भरने दो अपने शब्दों में
सारे शहरों की खाक–धूल
इस यात्रा में वापसी नहीं
बस चलते जाना है अकूल।

यही भरोसा केदार जी को विलक्षण और महान बनाता है। वे अपनी कविताओं को सेते–पोसते नहीं, बल्कि उन्हें यह आदेश देते हैं –

बन सको अगर तो बजरी–गिट्टी
चाहे कुछ भी बन जाओ
ढल जाए न दिन, छूट जाए न बस
अब जाओ मेरी कविताओ!

केदार जी की कविताओं में कहीं कोई ठहराव नहीं है। कोई छिपाव भी नहीं। वे अपनी कविताओं में किसी एक लीक पर नहीं चलते बल्कि बराबर नई राह बनाते हैं। उनकी कविताओं में एक ऐसी अदृश्य बेचैनी है, जो धीरे–धीरे पाठक में समा जाती है। ऐसी कला जो जीवन में घुल जाती है। जिन लोगों को लगता है कि केदार जी सिर्फ सौन्दर्य के कवि हैं, वे ऐसे लोग हैं जो या तो केदार जी की कविताएं पढ़ते नहीं या कविता की इकहरी समझ से ग्रस्त हैं। केदार जी साधारण और खुरदुरा जीवन जी रहे लोगों के कवि हैं। वे आभिजात्य वर्ग के कवि किसी भी सूरत में नहीं हैं। सन् 1969 में ही उन्होंने अपनी एक छोटी सी कविता 'ऊँचाई' में लिखा था–

मेरे शहर के लोगों
यह कितना भयानक है
कि शहर की सारी सीढ़ियाँ मिलकर
जिस महान ऊँचाई तक जाती हैं
वहाँ कोई नहीं रहता!

इतना ही नहीं, पाँच वर्ष और पहले 1964 में अपनी सुप्रसिद्ध कविता 'फर्क नहीं पड़ता' में उन्होंने जो कहा था वह आम जनता का कवि ही कह सकता है–

और यह समय है
जब रक्त की शिराएं शरीर से कटकर

अलग हो जाती हैं
और यह समय है
जब मेरे जूते के अन्दर की एक नन्ही–सी कील
तारों को गड़ने लगती है।

पचास वर्षों बाद आज के समय में यह सच और अधिक विद्रूप होकर हमारे जीवन में उपस्थित है। सन् 2005 में प्रकाशित 'टॉलस्टाय और सायकिल' संग्रह की पहली ही कविता में कवि उन लोगों की ओर से बोल रहा है, जो काम पर चले गए हैं। उसे लगता है कि वह उस 'चिउँटी' की तरफ से बोल रहा है, 'जो नागासाकी में अकेली बच गई थी'। इसे कहते हैं कविता में सर्वहारा चेतना। कहीं कोई नारेबाजी नहीं। कोई शोर नहीं। यह अकारण नहीं है कि केदारनाथ सिंह की कविता को प्रेम करने वालों की संख्या समय के साथ बढ़ती गई है।

12.3 आमजन के संघर्ष को वाणी

केदारनाथ सिंह समकालीन हिन्दी कविता के शिखर कवि थे, इससे शायद ही किसी को इंकार हो। उन्होंने कविता/साहित्य की राजनीति करने वाले लोगों से निरपेक्ष, कुम्भनदास और कबीरदास जैसे संत कवियों के प्रति गहरी कृतज्ञता से भरी, ऐसी कविताएं लिखी हैं जिनमें हमारी भाषा और उस भाषा में जीवन जी रहे लोगों का स्वाभिमान और संघर्ष वाणी पाता है। उनकी कविताएं 'राजनीतिक कविता' होने का शोर नहीं करतीं लेकिन गहरे राजनीतिक संकेतों और निहितार्थों से भरी हुई हैं। मनुष्यता की नीली आभा और राजनीति की लालिमा से वह रसायन तैयार होता है जो केदारनाथ सिंह की कविता का जीवद्रव्य बनता है। एक ऐसे कवि की कविता का जीवद्रव्य जो 'आप्तवचन' रचने के अहंकार का हर संभव प्रतिवाद करता है और एक पुरखे के समक्ष अपना प्रश्न इस तरह रखता है जानता हूँ–

समाधि से फूटकर
आता नहीं कोई उत्तर
फिर भी कविवर जाते–जाते पूछ लूँ
यह कैसी अनबन है
कविता और सीकरी के बीच
कि सदियाँ गुजर गईं
और दोनों में आज तक पटी ही नहीं!

और यह भी तय है, जब तक 'सीकरियाँ' सत्ता के दंभ और दमन–शोषण के आक्सीजन पर चलेंगी, यह पटरी बैठने वाली नहीं है। कविता सभी प्रकार की सीकरियों का सर्वाधिक पुरातन और स्थायी प्रतिपक्ष है। केदारनाथ सिंह की कविताएं पिछले साठ वर्षों से न सिर्फ इस मनुष्यधर्मी प्रतिपक्ष का निरंतर सृजन कर रही हैं बल्कि उसे शक्ति–सम्पन्न भी बनाती रही हैं।

अक्सर यह देखा गया है कि अनुभव के शिखर पर पहुँचे कवि भी जाने–अनजाने दुहराव के शिकार होने लगते हैं। पाठकों–आलोचकों को महसूस होता है कि उस कवि के संसार में वे पहले भी कुछ उसी तरह की ध्वनियाँ सुन चुके हैं। लेकिन केदारनाथ सिंह की कविताओं को पढ़ते हुए ऐसा प्रतीत नहीं होता। एक ऐसी उम्र जब थकान स्थायी भाव बन जाती है तब भी केदारनाथ सिंह का कवि उम्र के बोध के बावजूद सूर्य को अपना समकालीन बताता है। वह उसे अपने पहले प्रेम के प्रतिद्वन्द्वी की तरह रेखांकित करते हुए धीरे से यह भी कहता है–

मैं उसे इसलिए भी जानता हूँ
कि वह ब्रह्मांड का

सबसे सम्पन्न सौदागर है
जो मेरी पृथ्वी के साथ
ताप और ऊर्जा की तिजारत करता है
ताकि उसका मोबाइल
होता रहे चार्ज।

कुछ बातों को कई कवि असाधारण चिल्लाहट के साथ कहते हैं, फिर भी बात अनसुनी रह जाती है। इसके समानान्तर केदार जी बहुत संयत ढंग से अपनी बात कहते हैं और वह सुनने वाले/वालियों को अपनी बात लगने लगती है। यह 'स्व' के 'अन्य' में विलोपन से निःसृत कला है जो कविता को अपेक्षित ऊष्मा से भर देती है।

केदारनाथ सिंह की कविताओं में विद्रोह के कई रूप हैं। वे एक ऐसे कवि हैं जो 'वस्तु' और 'निष्प्राण' मान ली गई चीजों की चेतना को रेखांकित करते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह 'अति साधारण' के प्रति निष्ठा का प्रमाण है। 'विद्रोह' शीर्षक कविता में बिस्तर अपने कपास में वापस जाना चाहता है। 'कुर्सी और मेज' संवेदनहीनता की इस अकाल बेला को इस तरह परिभाषित करते हैं–

आपको सहते–सहते
हमें बेतरह याद आ रहे हैं हमारे पेड़
और उनके भीतर का वह जिन्दा द्रव
जिसकी हत्या कर दी है आपने।

12.4 संवेदनाओं का पुनराविष्कार

केदारनाथ सिंह की कविताएं उन चीजों और संवेदनाओं का पुनराविष्कार करती हैं जो हमारे जीवन में गहरे शामिल हैं लेकिन जिनको हम भूल गए हैं। वे 'कपास' के फूलों पर कविता लिखते हुए उन पक्षों पर विचार करते हैं, जिन पर किसी की दृष्टि लगभग जाती ही नहीं। कविता की आरंभिक पंक्तियाँ हैं–

वे देवता को पसन्द नहीं
लेकिन आश्चर्य इस पर नहीं
आश्चर्य तो ये है कि कविगण भी
लिखते नहीं कविता कपास के फूल पर
प्रेमीजन भेंट में देते नहीं उसे
कभी एक–दूसरे को
जबकि वह है कि नंगा होने से
बचाता है सबको
और सुतर गया मौसम
तो भूख और प्यास से भी
बचाता है वह
ईश्वर को तो ठंड लगती नहीं
वैसे नंगा होना भी
वहाँ उतना ही सहज है
उतना ही दिव्य
इसलिए इतना तय है कि ठंड के विरुद्ध
आदमी ने ही खोजा होगा

पृथ्वी पर पहला कपास का फूल।

यह पूरी कविता साहचर्य, सौन्दर्यबोध और विस्मरण की नयी व्याख्या करने के साथ ही बहुत तेजी से अर्थहीन हो रहे एक शब्द 'कृतज्ञता' को अपने पाठकों की स्मृति का हिस्सा बनाती है। जो खो रहा है लेकिन जिसे हर हाल में बचना चाहिए, केदारनाथ सिंह की कविताएं अपनी पूरी सामर्थ्य से उसके साथ और उसके पक्ष में खड़ी हैं। वे पृथ्वी से उसके घर का पता पूछते हुए घास के पास जाते हैं, उसकी परेशानी को समझने की कोशिश करते हैं और अपने समय की सबसे जरूरी इबारत लिखते हैं–

कुछ सूचनाएँ हैं उसके पास
कुछ बातें जरूरी
जो वह बुदबुदाना चाहती है
तुम्हारे कान में
कभी भी.......
कहीं से भी उग आने की
एक जिद है वह
दुनिया की सबसे खूबसूरत जिद
ताकि 'उगना' शब्द जिन्दा रहे तुम्हारे शब्दकोष में।

देखना चाहिए कि केदारनाथ सिंह किस प्रकार दूब जैसी मामूली घास को विद्रोह, स्वाभिमान और सृजन के एक बड़े प्रतीक में बदल देते हैं। यही वह दृष्टि है जो उन्हें विशेष और अग्रणी बनाती है। इन दिनों हमारे देश में जनतंत्र की जो स्थिति है, उसमें इन पंक्तियों के गहरे राजनीतिक आशयों को समझा जा सकता है–

कभी–कभी लगता है
और पिछले कुछ समय से
कुछ ज्यादा ही लगता है
कि आदमी के जनतंत्र में
घास के सवाल पर
होनी चाहिए लम्बी एक अखंड बहस
पर जब तक वह न हो
शुरुआत के तौर पर मैं घोषित करता हूँ
कि अगले चुनाव में
मैं घास के पक्ष में
मतदान करूँगा
कोई चुने या न चुने
एक छोटी –सी पत्ती का बैनर उठाए हुए
वह तो हमेशा मैदान में है!

यही एक सर्जक का प्रतिपक्ष है। कविता का श्लाघ्य सौन्दर्य–बोध।

दुनिया में तीन तरह के कवि होते हैं। एक, जो उधार की सम्पदा पर अपने जन्मकाल से ही वैश्विक होते हैं। दो, जो सिर्फ स्थानीय होते हैं और उसी के साथ बीत जाते हैं। तीन, जो स्थानीयता के महत्व के साथ वैश्विक भाव–बोध से भरे होते हैं। इस तीसरे ढंग के कवि ही हर भाषा में पहली पंक्ति के कवि माने जाते हैं। हिन्दी में इस तीसरे ढंग की व्याख्या के लिए केदारनाथ सिंह की कविताएं विश्वसनीय आधार सामग्री का कार्य करती हैं। 'गीता–शैली' में लिखी उनकी कविता 'एक पुरबिहा का आत्मकथ्य' स्थानीय और वैश्विक भाव–बोध का सुन्दर

उदाहरण है। यह कविता भारतीय होने (अन्ध राष्ट्रवादी के अर्थ में नहीं) को भी सुन्दर ढंग से व्यंजतित करती है। इसकी अंतिम पंक्तियाँ हैं –

इस समय यहाँ हूँ
पर ठीक इसी समय
बगदाद में जिस दिल को
चीर गयी गोली
वहाँ भी हूँ
हर गिरा खून
अपने अँगौछे से पोंछता
मैं वही पुरबिहा हूँ
जहाँ भी हूँ।

इस पूरी कविता में सीधे–सीधे कहीं जिक्र नहीं आया है लेकिन इसे पढ़ते हुए अहिंसा के महान प्रस्तोता महात्मा बुद्ध और मनुष्यता के अमर गायक कबीर जैसे विश्व–चेतस पुरबियों की स्मृति स्वाभाविक रूप से उभर आती है। काव्य मर्मज्ञों से अलग से यह कहने की जरूरत नहीं पड़ती कि इस कविता का सर्जक बुद्ध और कबीर की धरती से आया है।

केदारनाथ सिंह की काव्य–कला का एक प्रमुख रूप तब देखने में आता है जब वे किसी साधारण सी बात से कविता शुरू करते हैं लेकिन उसे पूर्णता एक ऐसी सूक्ति में ले जाकर देते हैं जो पाठक के लिए न सिर्फ समकालीन होती है बल्कि अर्थ की बहुस्तरीयता उसे असाधरण उच्चता प्रदान करती है। 'विज्ञान और नींद' एक ऐसी ही कविता है।

एक कवि के पूरे जीवन में कुछ कविताएं ऐसी होती हैं जिनका महत्व उस कवि के लिए जितना होता है, उतना ही उस भाषा के लिए भी जिसमें वह कवि संभव हुआ होता है। केदार जी के लम्बे कवि–जीवन में ऐसी कई कविताएं हैं। इन्हीं में एक है–मंच और मंचान। कविता के आरंभ में एक छोटी –सी टिप्पणी है जो कविता के प्रवेश–द्वार की तरह है। बड़े फलक वाली यह कविता यहीं से खुलने लगती है। एक चीनी बौद्ध भिक्षु के बहाने यह कविता मनुष्य, मनुष्यता, घर और 'राजनीति की अंधेरी गलियों' तक अकथ और अथक आवाजाही सम्पन्न करती है। कह सकते हैं कि 'मंच और मचान' एक विशेष कालखण्ड का काव्यात्मक दस्तावेज है। कवि ने चीना बाबा का जो परिचय दिया है उसमें जितनी कविता है, उतनी ही जीवन की आभा –

पत्तों की तरह बोलते
और तने की तरह चुप
एक ठिंगने से चीनी भिक्खु थे वे
जिन्हें उस जनपद के लोग कहते थे
चीना बाबा
कब आए थे वे रामाभार स्तूप पर
यह कोई नहीं जानता था
पर जानना जरूरी भी नहीं था
उनके लिए तो बस इतना ही बहुत था
कि वहाँ स्तूप पर खड़ा है
चिड़ियों से जगर–मगर एक युवा बरगद
बरगद पर मचान है
और मचान पर रहते हैं वे
जाने कितने समय से।

अपनी एक अन्य कविता 'अगर इस बस्ती से गुजरो' में पितृसत्ता पर चोट करते हुए केदारनाथ सिंह कहते हैं–

थोड़ा आगे जाने पर
एक छोटा–सा जर्जर घर तुम्हें मिलेगा
कुछ समय पहले तक
उसमें एक बुढ़िया रहती थी
मर्दों की दुनिया से लड़ती–झगड़ती
एक निपट अकेली खुद्दार औरत
वह इस बस्ती की
सबसे दमदार आवाज थी
जरा सोचना इस पर
क्या यह सम्भव नहीं कि उस घर को
कर दिया जाय घोषित
एक राष्ट्रीय धरोहर।

जाहिर है, ये पंक्तियाँ सिर्फ संस्कृति समीक्षा का उद्यम नहीं करतीं बल्कि ये एक नई संस्कृति की प्रस्तावना भी तैयार करती हैं। इस संग्रह में कई ऐसे प्रसंग और पंक्तियाँ हैं जो जाति व्यवस्था और पितृसत्ता के समूल नाश का उद्घोष करती हैं।

12.5 उम्मीद के कवि

केदारनाथ सिंह अपने कवि जीवन के आरंभ से ही उम्मीद के कवि हैं लेकिन वे अपने समय की कुरूपता को ढकने की कोशिश नहीं करते। 'सृष्टि पर पहरा' कविता में एक सूखते वृक्ष पर बचे तीन –चार पत्ते यदि उन्हें रोकते और लुभाते हैं तो बबूल के नीचे एक मजदूर स्त्री का सो रहा बच्चा भी उन्हें रोकता और व्यथित करता है। वे निहायत सादा दिखती 'पड़ोसी' कविता में अपने समय की विडम्बना को चीन्हते हुए पाठक को संवेदना का थर्मामीटर थमा देते हैं। ऐसा वही कवि कर सकता है, जिसकी कला सीझ गई हो। अधकचरा कवि ऐसी कविताओं में मुँह के बल गिरता है।

'पत्नी की अट्ठाइसवीं पुण्यतिथि पर' शीर्षक कविता केदार जी के काव्य–संसार में एक अलग तरह की रचना है। यह कविता गहरे आत्मालोचन से निःसृत है। अपनी पत्नी को याद करते हुए केदार जी लिखते हैं–

पहले वह गई
फिर बारी–बारी चले गए
बहुत से दिन
और ढेर सारे पक्षी
और जाने कितनी भाषाएँ
कितने जलस्रोत चले गए दुनिया से
जब वह गई।

फिर आगे केदार जी लिखते हैं –

एक दिन यह सोचकर
कि जो खाली है
शायद कुछ भर जाए
वाया कविता हो आया क्रेमलिन

देख आया
लन्दन
पेरिस
और सात समुन्दर पार का
लिबर्टी स्टेच्यू
यानी एक बूढ़ी चिड़िया की
चूँ....चूँ....चूँ....चूँ......
और जो खाली था
होता रहा खाली और खाली।

कुछ रिक्तियों को यात्राएं, पद, पुरस्कार–सब मिलकर भी नहीं भर पाते। यही मनुष्य होने की निशानी भी है। अपनी एक छोटी –सी कविता 'आँसू का वजन' में केदार जी जो कहते हैं उसे इस कविता के साथ मिलाकर पढ़ना चाहिए। 'आँसू का वजन' की पंक्तियाँ हैं –

कितनी लाख चीखों
कितने करोड़ विलापों–चीत्कारों के बाद
किसी आँख से टपकी
एक बूँद को नाम मिला
आँसू
कौन बताएगा
बूँद से आँसू
कितना भारी है!

12.6 कविता और लोकतंत्र

चुप्पी लोकतंत्र के लिए एक बड़ा खतरा है। हम एक ऐसे समय में हैं जब चुप्पी धीरे–धीरे एक धर्मनिरपेक्ष आचरण में बदलती जा रही है। जिधर देखिए लोग अपनी –अपनी चुप्पी में अपना भला ढूँढ रहे हैं। यह एक ऐसी समस्या है जिसे अलग–अलग कवि अलग–अलग दृष्टि से देखते और अभिव्यक्त करते हैं। केदारनाथ सिंह इसे बिल्कुल जुदा लेकिन बेहद प्रभावी ढंग से कविता में लाते हैं। 'चुप्पियाँ' शीर्षक कविता में जब इन पंक्तियों के साथ वे आते हैं, तब पाठक के भीतर कुछ टूटता है–

चुप्पियाँ बढ़ती जा रही हैं
उन सारी जगहों पर
जहाँ बोलना ज़रूरी था
बढ़ती जा रही हैं वे
जैसे बढ़ते हैं बाल
जैसे बढ़ते हैं नाखून
और आश्चर्य कि किसी को वह गड़ता नहीं।

'एक चुप्पी' एक व्यक्ति या परिवार को खाती है लेकिन 'चुप्पियाँ' अन्ततः एक राष्ट्र को गूंगा कर देती हैं। केदार जी की यह कविता बिना अतिरिक्त बोले हुए चुप्पियों के विरूद्ध आवाज उठाती है। एक बड़ा कवि (उस्ताद कवि) सिर्फ कविता नहीं लिखता, वह अपने बाद आने वाले कवियों के लिए सबक भी तैयार करता है। कहने की जरूरत नहीं कि केदारनाथ सिंह की कविताएं कविता भी हैं और कविता की पाठशाला भी। 'सृष्टि पर पहरा' में एक कविता 'कवि देवेन्द्र कुमार' शीर्षक से है। यह कविता केदार जी के समकालीन और अभिन्न मित्र देवेन्द्र कुमार

(बंगाली जी) के बारे में है। वे मूलतः दलित समाज थे। उनकी कविताओं में ऐसे प्रसंग और संकेत भरे पड़े हैं जो तथाकथित सवर्ण समाज में जनमे कवियों के वहाँ संभव ही नहीं हो सकते। मार्मिक पंक्तियों और स्मृतियों से भरी यह कविता एक साथ श्रद्धांजलि, भावांजलि और काव्यांजलि है। इस कविता की ये पंक्तियाँ शब्दों में समाए अर्थ से कुछ अधिक कहती हैं–

चलते थे सड़क पर
तो इतने अनन्य साधारण
कि अँट नहीं सकते थे
किसी महाकाव्य में
पर मिल सकते थे आपको
किसी भी मोड़ पर
यद्यपि उनको गए
काफी दिन हुए
पर चौंकिएगा मत
अगर किसी दिन सहसा
उन–सा कोई दिख जाय
किसी जातक–कथा में।

12.7 संघर्षशील जीवन का चित्रण

केदारनाथ सिंह की कविताओं में संघर्षशील जीवन के अनेक चित्र हैं। वे बगुलों पर लिखते हुए मजदूरों के जीवन में प्रवेश करते हैं। यह रेखांकित करते हैं कि मजदूरी में भी स्त्री–पुरुष का भेद कितना गहरा है। शाम को थके–हारे लौट रहे बगुलों के झुण्ड को देखकर उन्हें 'खेत मजूर' याद आते हैं। उनकी संवेदना इसी तरह अपना विस्तार रचती है।

'सृष्टि पर पहरा' में संकलित 'कंधे की मृत्यु' शीर्षक कविता महज उस संग्रह की नहीं, हिन्दी कविता की एक उपलब्धि है। मेरी अधिकतम जानकारी में एक 'हलवाहे' के औदात्य पर लिखी गई यह हिन्दी की अकेली कविता है। यह कविता उस व्यवस्था पर प्रश्न उठाती है जिसमें खेत का 'मालिक' कोई और होता है और उसमें अन्न उपजाने वाला, उसे अपने पसीने से सींचने वाला महज नौकर होता है–एक हलवाहा। इस कविता के 'लालमोहर' 'एक' होते हुए भी मात्र 'एक' नहीं हैं। वे इस देश के करोड़ों खेतिहर मजदूरों का प्रतिनिधित्व करते हैं। धरती को ऊर्वर बनाने वाले, अन्न उपजाने वाले अन्नदाता लालमोहर का घर आप भी देखिए–

घर तो क्या था
पर दूसरा कोई शब्द है नहीं मेरी भाषा में
इसलिए 'घर' ही कहूँगा।

और इसी घर में गहरी मूर्च्छा में लेटे हुए हैं धीरोदात्त नायक लालमोहर, जिनके बारे में सब जानते हैं–

एक बार जब भरे आषाढ़ में
वे चला रहे थे हल
और आधी से ज्यादा हो चुकी थी बोआई
तो अचानक ऐसा हुआ
कि धसककर बैठ गया बायाँ बैल
'असगुन है ये'–वे बुदबुदाए

फिर बाएँ को प्यार से पुचकारा
जुए को हटाया उसके कंधे से
और उसके नीचे रख दिया अपना कंधा
अब बाएँ आदमी
दाहिने बैल
कहते हैं–उस बरस
ऐसी फसल हुई
जैसी कभी नहीं हुई थी।

लेकिन सब जानते हैं, इसके बदले लालमोहर को कुछ नहीं मिला होगा। तय है, इसके बाद भी उनका परिवार कभी आधे पेट और कभी भूखे पेट ही सोया होगा। केदार जी ने इस अमानवीय और शोषण पर आधारित असमान व्यवस्था को रेखांकित करते हुए लिखा है–

तो अब ये वही कंधे थे
वही लालमोहर
जो बरसों तक किसी और के खेत में
हल चलाने के बाद
इस समय सो रहे थे गहरी मूर्च्छा में
अपनी ही खाल की खरहरी खटिया पर
इस तरह–जैसे मरना भी कोई दिया गया काम हो जरूरी
जिसे पूरी जिम्मेदारी से पूरा ही करना था साँझ होते–होते।

एक ऐसा जीवन जिसमें अपने श्रम पर अपना अधिकार न हो, मरते हुए भी देखकर ऐसा लगे जैसे यह किसी और का दिया काम है, मनुष्य जीवन की इससे बड़ी विडम्बना क्या होगी! केदारनाथ सिंह की यह कविता इस विडम्बना को जिस आवरणरहित ढंग से सामने रखती है, उसे देख–पढ़कर किसी भी सहृदय की आत्मा का मुँह खुला रह जाता है। पूरी कविता में एक शब्द भी अतिरिक्त नहीं है। कह सकते हैं, यह कविता हमारी संवेदना की बुनावट पर प्रहार करते हुए एक ऐसा आईना सामने रख देती है, जिसमें हमारे सभी सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक छद्म मुँह छिपाते दिख जाते है।

12.8 मातृभाषाओं की पक्षधरता

एक कवि और चिंतक के रूप में केदारनाथ सिंह मातृभाषाओं के पक्षधर थे। उन्होंने जीवन भर अपनी कविताओं में भाषिक साम्राज्यवाद का प्रतिकार किया। 'भोजपुरी' पर लिखी उनकी कविताओं को इसी दृष्टि से देखना चाहिए। कहने की आवश्यकता नहीं कि आर्थिक साम्राज्यवाद और भाषिक साम्राज्यवाद एक दूसरे के प्रबल पक्षधर और सहयोगी हैं। पूरी दुनिया मे यदि आर्थिक साम्राज्यवाद के साथ–साथ भाषिक साम्राज्यवाद को सफलता मिल जाएगी तो तय है कि एक बड़ी आबादी मुँह में जुबान के बावजूद गूंगी हो जाएगी। माँ के अंतिम संस्कार के बाद गंगा से निवेदन में कही गई इन पंक्तियों में जो है, वह मात्र अपनी माँ के प्रति व्यक्त की गई चिन्ता नहीं है बल्कि आने वाले एक बड़े खतरे का संकेतक है–

मैंने भागीरथी से कहा –
माँ,
माँ का ख्याल रखना
उसे सिर्फ भोजपुरी आती है।''

उनके संग्रह 'सृष्टि पर पहरा' में 'भोजपुरी' शीर्षक से एक स्वतंत्र कविता ही है। इसी संग्रह में एक और कविता 'देश और घर' शीर्षक से है जिसमें दो भाषाओं में समानान्तर जीवन जीने के सुख और द्वन्द्व का प्रभावी अंकन है। 'देवनागरी' शीर्षक कविता में भाषा सिद्धांतों को धता बताते हुए जो जीवन राग विन्यस्त है, वह केदारनाथ सिंह की असल पहचान है। ऐसा जीवन राग गहरी सामाजिक संलग्नता की कोख से पैदा होता है। ऐसा कम कविताओं के साथ होता है कि उसकी प्रत्येक पंक्ति आपको अंकवार देती चले। इस कविता की कुछ पंक्तियाँ देखिए–

'न' एक स्थायी प्रतिरोध है
हर अन्याय का।'

या इन पंक्तियों को देखिए –

'स' के संगीत में
संभव है एक हल्की–सी सिसकी
सुनाई पड़े तुम्हें
हो सकता है एक खड़ीपाई के नीचे
किसी लिखते हुए हाथ की
तकलीफ़ दबी हो
कभी देखना ध्यान से
किसी अक्षर में झाँककर
वहाँ रोशनाई के तल में
एक ज़रा–सी रोशनी
तुम्हें हमेशा दिखाई पड़ेगी
यह मेरे लोगों का उल्लास है
जो ढल गया है मात्राओं में
अनुस्वार में उतर आया है
कोई कंठावरोध
पर कौन कह सकता है
इसके अन्तिम वर्ण 'ह' में
कितनी हँसी है
कितना हाहाकार!

केदार जी का लेखन बताता है कि वे भारतीय भाषाओं के बीच आवाजाही के समर्थक थें। वे हिन्दी को प्यार करते थे लेकिन साथ ही अन्य भारतीय भाषाओं के प्रति गहरा अनुराग रखते थे। इस संग्रह में 'हिन्दी' शीर्षक से एक कविता है जो मलयालय के सुप्रसिद्ध कवि के. सच्चिदानन्दन को समर्पित है। यह समर्पण अपने आप में एक पूरा विचार है। 'अन्य' के प्रति आदर का सूचक है। यह कविता 'राजभाषा' के सरकारी खेल से पर्दा उठाती है। इसमें एक अनन्य हिन्दी प्रेमी (जो हिन्दी का बड़ा कवि भी है) लगभग आर्तनाद करते हुए कहता है –

मेरा अनुरोध है
भरे चौराहे पर करबद्ध अनुरोध
कि राज नहीं–भाषा
भाषा–भाषा सिर्फ भाषा रहने दो मेरी भाषा को
इसमें भरा है पास–पड़ोस
और दूर–दराज की इतनी ध्वनियों का
बूँद–बूँद अर्क
कि मैं जब भी उसे बोलता हूँ
तो जैसे कहीं गहरे

अरबी–तुर्की बांग्ला तेलुगू
यहाँ तक कि एक पत्ती के हिलने की आवाज़ भी
मैं सब बोलता हूँ ज़रा–ज़रा
जब बोलता हूँ हिन्दी
और जब भी बोलता हूँ
यही लगता है–
सारे व्याकरण में
एक कारक की बेचैनी हूँ
एक तद्‌भव का दुख
तत्सम के पड़ोस में।

कहना होगा, केदारनाथ सिंह की भाषा संबंधी सभी कविताएं सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का तीक्ष्ण प्रतिवाद करते हुए भाषिक लोकतंत्र का परिवेश सृजित करती हैं।

12.9 'बाघ' और हमारा समय

ठीक–ठीक याद नहीं, संभवतः 1990 में 'बाघ' कविता के कुछ खण्डों को पहली बार पढ़ा था। केदार जी की प्रतिनिधि कविताओं के संपादक परमानंद श्रीवास्तव ने इस कविता के सोलह खण्डों को 'प्रतिनिधि कविताएं' में शामिल करते हुए उसे 'ढलती शताब्दी का पंचतंत्र' कहा था। प्रतिनिधि कविताएं के अनुसार इन सोलह खण्डों की रचना 1984 में हुई थी। हालांकि 1996 में भारतीय ज्ञानपीठ से पुस्तककार छपे 'बाघःलम्बी कविता' की संक्षिप्त भूमिका में केदारनाथ सिंह ने 'बाघ' की कोई रचना तिथि नहीं दी है। 'प्रतिनिधि कविताएं' और 'बाघःलम्बी कविता' में खण्डों का क्रम भी एक–सा नहीं है। केदार जी ने भूमिका में यह स्पष्ट भी कर दिया है।

पुस्तक की भूमिका में केदानाथ सिंह ने पंचतंत्र और इस कविता के संबंध पर एक टिप्पणी की है, जो इस कविता को खोलने में सहयोगी है–'पंचतंत्र' के गुंफित ढाँचे से निकलकर पहली बार जब बाघ का बिंब मेरे मन में कौंधा था, तब यह बिल्कुल स्पष्ट नहीं था कि वह एक लंबी काव्य–श्रृंखला का बीज–बिंब बन सकता है। वस्तुतः पहले टुकड़े के लिखे जाने के बाद ही यह पहली बार लगा कि इस क्रम को और आगे बढ़ाया जा सकता है। फिर तो एक खंड के किसी आंतरिक दबाव से दूसरा खंड जैसे अपने–आप बनता गया। कथात्मक ढाँचे की इस स्वतःस्फूर्त प्रजननशीलता से यह मेरा प्रथम काव्यात्मक साक्षात्कार था।'

परमानंद जी ने जब 1985 में 'बाघ' को 'ढलती शताब्दी का पंचतंत्र' कहा होगा तब निश्चित ही उनके जेहन में तत्कालीन राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक बदलाव रहे होंगे। इस ओर लोगों की दृष्टि कम जाती है लेकिन यह एक तथ्य है कि इस मुल्क के बाजार में बदलने की प्रक्रिया को जिस हिन्दी कवि ने पहली बार पहचाना था, वे केदारनाथ सिंह ही थे। 1984 में लिखी गई उनकी कविता 'दाने' को उदारीकरण और मुक्त बाजार के इस दौर में नए सिरे से पढ़ा जा सकता है। आकार में बेहद छोटी यह कविता इस प्रकार है– 'नहीं,/हम मंडी नहीं जायेंगे/खलिहान से उठते हुए/कहते हैं दाने/जायेंगे तो फिर लौटकर नहीं आयेंगे/जाते–जाते/कहते जाते हैं दाने/अगर लौटकर आये भी/तो तुम हमें पहचान नहीं पाओगे/अपनी अन्तिम चिट्‌ठी में/लिख भेजते हैं दाने/इसके बाद महीनों तक/बस्ती में/कोई चिट्‌टी नहीं आती।

इस कविता का अंत जिस सन्नाटे के साथ होता है, उसी सन्नाटे के साथ 'बाघ' का पाठ उसके कई ऐसे अर्थ खोलता है जिसके अक्सर छूट जाने का खतरा बना रहता है। इस कविता में केदार जी की काव्य कला ने नया उत्स प्राप्त किया था। अमूमन वे कथा में कविता नहीं कहते।

हाँ, उनकी कविताओं में कथा के सूत्र होते हैं। इस अर्थ में यह कविता केदार जी के परिचित रूप विधान के समानान्तर एक सर्वथा नए सौन्दर्य लोक का सृजन करती है और इसीलिए इस कविता को उस ढंग से समझना और विश्लेषित करना मुश्किल है जिस ढंग से 'माँझी का पुल' जैसी कविताओं को समझा और विश्लेषित किया जाता है। इस कविता के 'आमुख' में कवि जब कहता है –

'बिंब नहीं
प्रतीक नहीं
तार नहीं
मैं ही कहूँगा'

तो वह 'बाघ' के बहाने पिछली शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उभरी हाशिए की उन आवाजों को रेखांकित करता है, जिनकी ओर से प्रभु वर्ग सदैव बोलता रहा और अपने 'प्रभु' बने रहने का पुख्ता इंतजाम भी करता रहा। पिछली सदी के उत्तरार्द्ध में उभरी और उठी ये वे आवाजें हैं जो अपने 'होठों की थरथराहट' किसी को नहीं देना चाहतीं। ये वे लोग हैं जो अपनी पीठ पर पड़े समय के पंजों के निशानों का इतिहास किसी और की भाषा में अभिव्यक्त नहीं करना चाहते। यह उनका प्रतिकार है। कवि जानता है तलवों में जो जलन है, मस्तिष्क में वही विचारों की धमक है। यह लम्बी यातना से मुक्ति का घोषणा–पत्र है और यह 'बाघ' के माध्यम से आया है, जिसे सामान्यतः आतंक का प्रतीक माना जाता है। केदार जी ने बाघ को कविता में अपने समय के मजबूत ताले की 'चाभी' बना दिया है।

'बाघ' के सहारे यदि हम इक्कीसवीं सदी को समझने की कोशिश करें तो कई महत्वपूर्ण निहितार्थ हाथ लगेंगे। कविता के दूसरे खण्ड में शहर में बाघ के आने का प्रसंग है। बाघ आया लेकिन किसी ने देखा नहीं–

किसी ने उसे देखा नहीं
अँधेरे में सुनी नहीं किसी ने
उसके चलने की आवाज़
गिरी नहीं थी किसी भी सड़क पर
ख़ून की छोटी–सी एक भी बूँद।

और यह बाघ लौट भी गया –

और जो चीज़ जहाँ थी
उसे वहीं छोड़कर
चुप और विरक्त
चला गया बाहर!

लेकिन तीसरे खण्ड में 'कथा की ओट' में बैठने से ठीक पहले वह अपने शिकार का खून पी चुका है। पिछली सदी के उत्तरार्द्ध का यह 'बाघ' अब इक्कीसवीं सदी में उदारीकरण की देह में पूरा का पूरा प्रवेश कर गया है। किसान आत्महत्याएं कर रहे हैं लेकिन 'हत्यारा' कहीं दिखाई नहीं दे रहा। वह किसानों–मजदूरों का जीवद्रव्य पी कर देश के बजट में इबारत बन जाता है। इक्कीसवीं सदी में इस 'बाघ' ने 'मुक्ति' की त्वचा धारण कर ली है। यह 'बाघ' कभी साम्प्रदायिकता की आग जलाता है और कभी–कभी अमेरिकी साम्राज्यवाद का प्रतीक बन जाता है। बुद्ध के इस महादेश में अब 'बाघ' का आतंक स्थाई सत्य है और बुद्ध की महान करुणा महज वाक् विलास। इस कविता का चौथा खण्ड इस विडम्बना का आख्यान रचता है।

'बाघ' दुःख नहीं जानता। वह दुःख का कारक है। कविता का बाघ दुःख के समक्ष निरूपाय है लेकिन हमारे समय के 'बाघ' सामान्य लोगों को न सिर्फ दुःख दे रहे हैं बल्कि उन्हें हर प्रकार से निरूपाय बनाने की अनवरत साधना में संलग्न हैं। ये दुःख समाप्त करने के बारे में नहीं विचारते बल्कि उसे सनातन सत्य में बदलने का उद्यम करते हैं। इन दिनों बाघ और बुद्ध का द्वन्द्व भी नहीं है। हिंसा स्थाई भाव है। यहाँ कवि अतीत का स्वप्न रचता है। सामान्यतः अतीत का वर्णन और विश्लेषण किया जाता है लेकिन 'सामान्य' की रक्षा के लिए कवि व्यवहार के विपरीत भी जाता है। अब जबकि अहिंसा महज स्मृति सत्य है तब कवि इसी स्मृति के माध्यम से एक विराट स्वप्न का सजृन करता है। एक ऐसे नगर का स्वप्न जहाँ –

इस तरह चलता रहा
महान जीवन उस छोटे से नगर का
बुद्ध की करुणा
और बाघ के आतंक की
एक दूसरे को काटती हुई
दोहरी छाया में।

और इस प्रकार साथ होने का यह आशय कदापि नहीं कि वे पूरक हैं एक दूसरे के। कवि कहना नहीं भूलता–

इस तरह दोनों के बीच
एक अजब–सा रिश्ता था
जहाँ एक ओर भूख की भूख थी
दूसरी ओर करुणा ही करुणा
और दोनों की बीच
कोई पुल नहीं था।

केदारनाथ सिंह मनुष्य और प्रकृति के औदात्य के गायक हैं। उन्हें बुद्ध की करुणा और बाघ की विराट उपस्थिति–दोनों सृष्टि के पूरक लगते हैं। प्रकृति की सहजता, सरलता, अव्याख्येय सुंदरता और केदार जी की कविता में गहरा रिश्ता है। केदार जी उन कवियों में नहीं हैं जो सहज को जटिल बना देते हैं बल्कि वे एक ऐसे कवि हैं जो सृष्टि की सहजता को उसकी सम्पूर्णता के साथ पाठकों के भाव और विवेक लोक में ले जाने का उद्यम करते हैं।

कविता के पाँचवें खण्ड में खेत में खड़ा एक विशाल लाल ट्रैक्टर है और दूसरी ओर गन्ने के खेत में 'भई, वाह अद्भुत!' कहता हुआ बाघ है। इस कविता में अचानक ट्रैक्टर का आना आस्वाद में बाधा डालता है। लगता है, इस कथा में ट्रैक्टर का क्या काम! लेकिन जैसे ही खण्ड पूरा होता है वैसे ही पाठक को यह समझ में आ जाता है कि ट्रैक्टर महज ट्रैक्टर नहीं है, वह विकास का प्रतीक भी। कपिल देव ने केदारनाथ सिंह की 'जानवर' शीर्षक कविता को सामने रखते हुए 'बाघ' के इस खण्ड की बेहद प्रासंगिक व्याख्या की है। उनके शब्द हैं '–––––––––– क्या नहीं लगता कि खेत में खड़ा यह ट्रैक्टर अपनी दुर्जेयता से बाघ की सारी गरिमा को निरस्तकर रहा है? बाघ की सत्ता को चुनौती देता हुआ, उसके विराट अकेलेपन को रौंदने को तत्पर यह ट्रैक्टर क्या उस बाघ से भी पुख्ता और भयानक–एक नया बाघ नहीं? जाहिर है कि इस नये बाघ के अस्तित्व को पहले तो वह अपनी ईर्ष्या जनित कल्पनाओं से निरस्त करने की चेष्टा करता है। कल्पना करता है कि वह हराई में पड़ा हुआ एक विशाल दाना है जिसे दंतकथाओं की बुढ़िया उठा ले जाएगी और अपनी खुदबुदाती बटलोई में पकने के लिए डाल देगी। मगर जब इस कल्पना से भी उसकी चेतना पर छाया हुआ विशाल ट्रैक्टर मिटता नहीं है तो वह मानो वह उसकी सत्ता को स्वीकर कर लेता है।'

हिंसा से भरे इस व्याकुल समय में केदारनाथ सिंह का 'बाघ' धीरे–धीरे उन गुणों की ओर बढ़ता दिखता है जिससे मनुष्यता के प्रतिमान तय होते हैं। 'बाघ' को इस रूप में प्रस्तुत कर केदार जी अपने समय का 'क्रिटिक' रचते हैं। एक पक्षी और एक आदमी को अगल–बगल निर्भय सुस्ताता देखकर वह मुग्ध और अवाक् है। उसे वृक्ष का गीत सुनाई देता है। इन दिनों जब लोगों को अपने ही भीतर की आवाज सुनाई नहीं देती, जब शिकारी वृत्ति स्थाई भाव बनती जा रही है, तब हिंसा और आतंक के पर्याय 'बाघ' का इस कदर मानवीय हो जाना बेहद अथपूर्ण है।

'बाघ' को समकालीन राजनीति के संदर्भ में भी पढ़ा जा सकता है। आजकल चारों तरफ चुप्पी है। एक ऐसी चुप्पी जो भारतीय राजनीति में पहले कभी नहीं देखी गई। 'बाघ' कविता के छठे खण्ड में 'बाघ' और 'लोमड़ी' का संवाद है। इस युति पर भी ध्यान जरूर जाना चाहिए। 'बाघ' बेचैन है। वह लोमड़ी से प्रश्न करता है–

> ये आदमी लोग
> इतने चुप क्यों रहते हैं आजकल?

वह संभावना भी जताता है–

> हो सकता है
> उन्हें कोई काँटा गड़ा हो!

और इस कविता का अंत होता है–

> यह 'दुख' एक ऐसा शब्द था
> जिसके सामने बाघ
> बिलकुल निरुपाय था।

जाहिर है, 'बाघ' महात्मा बुद्ध और महात्मा गाँधी नहीं हो सकता और यह भी एक क्रूर सत्य है कि बुद्ध एवं गाँधी अब जीवन का आदर्श नहीं रह गए हैं। उनका नाम बार–बार लिया जाएगा लेकिन आचरण में घुलने नहीं दिया जाएगा। कहना होगा कि केदारनाथ सिंह ने बाघ और दुःख के बहाने अपने समय का शोकगीत रचा है।

इस कालखण्ड में जब मनुष्य ही मनुष्य के लिए दुःख सृजित कर रहे हैं तब एक 'बाघ' का रोना और उसके दुःख का कारण पूछने के लिए खरगोश, भालू और तितली का आना क्या संकेतित करता है? क्या इस विलाप को हम एक सांस्कृतिक विलाप अथवा महान जनतंत्र के करुण विलाप के रूप में नहीं पढ़ सकते!

कविता के पन्द्रहवें खण्ड में पृथ्वी पर लम्बी साँस लेने वाला 'बाघ' जलती लकड़ी को अपने सगोतिया की तरह महसूस करता है। अर्थात् जो अपने परिवार के सदस्य की तरह हैं, वे जंगल कट रहे हैं। बाघों के रहने की जगहें समाप्त हो रही हैं। पूंजीवाद की लपट चहुँओर बढ़ती जा रही है। सृष्टि का सौन्दर्य पूंजीवाद की मनुष्य और प्रकृति विरोधी अवधारणा की अग्नि में जलने को विवश है। इस खण्ड की अंतिम पंक्तियाँ 'बाघ' के भीतर पैदा हुए आतंक और असुरक्षाबोध की मार्फत 'सभ्यता समीक्षा' के दायित्व का निर्वहन करती हैं–'कि अचानक उसने देखी एक मरे हुए बाघ की/लंबी देह/जो दीवार पर झूल रही थी/बाघ ने पहली बार/चिल्लाना चाहा/पर चिल्लाना उसे आता नहीं था/फिर भी कहीं अंदर जैसे चिल्ला रहा था वह/कि वो देखो....वो देखो/वो जो वहाँ टँगी है दीवार पर/वह मेरी –हाँ, हाँ/वह मेरी देह है!

खण्ड अठारह का आरंभ इन पंक्तियों से होता है–

> उन्हें डर है कि एक दिन

नष्ट हो जाएँगे सारे–के–सारे बाघ
कि एक दिन ऐसा आएगा
जब कोई दिन नहीं होगा
और पृथ्वी के सारे–के–सारे बाघ
धरे रह जाएँगे
बच्चों की किताबों में।

कवि इस डर में एक बड़ा डर शामिल करता है–'कि हाथ कहाँ होंगे/आँखें कहाँ होंगी जो पढ़ेंगी किताबें/प्रेस कहाँ होंगे जो उन्हें छापेंगे/शहर कहाँ होंगे/जहाँ ढलेंगे टाइप/पन्ना कहाँ होगा जिस पर 'क' के बाद/कहीं से उछलता–कूदता/आ जाएगा 'ल' या 'ष'/जिसे हवा सुनेगी/और अपनी स्मृति में गढ़ लेगी/एक पूरा का पूरा शब्द/जिसे पत्ते दुहराएँगे/और जो पृथ्वी के किन्हीं अदृश्य तारों से/होता हुआ/किसी सुदूर अस्पताल की खिड़की के नीचे/एक मरते हुए आदमी के होठों तक पहुँचकर/चुपके से बन जाएगा/एक छोटा–सा मीठा–सा/जीने का गीत/मुझे डर है/एक बेहद सीधा/और सादा–सा डर/कि डर कहाँ होगा?

और यहाँ यह कहना उचित ही होगा कि यह 'डर' वह 'डर' नहीं है जिसे पूंजीवाद और साम्राज्यवाद पैदा कर रहे हैं। कोई गलत न समझ ले, इसलिए कवि एक ऐसे आदमी के बहाने, जो कहीं नहीं था लेकिन सब जगह था, कहता है–'पर दोस्तो, हमें जीना होगा/जीना होगा बाघ के साथ/और बाघ के बिना भी जीना होगा/जीना होगा/जैसे पानी जीता है/जैसे पत्थर जीता है/जीना होगा/जीना होगा/रस्सी से झूलकर/बधस्थल से लौटकर/जीना होगा/समय/चाहे जितना कम हो/स्थान/चाहे उस से भी कम/चाहे शहर में बची हो/बस उतनी–सी हवा/जितनी एक साइकिल में होती है/पर जीना होगा/जीना होगा/और यहीं/यहीं/इसी शहर में जीना होगा/इंच–इंच जीना होगा/चप्पा–चप्पा जीना होगा/और जैसे भी हो/यहाँ से वहाँ तक/समूचा जीना होगा।

और इस प्रकार एक शोकगीत के भीतर से महान जीवन राग पैदा होता है। यही केदारनाथ सिंह की विलक्षण काव्य–कला है। वहाँ असुंदर स्थाई हो ही नहीं सकता। केदारनाथ सिंह की कविता क्रूरता के अंधेरे में मनुष्यता का उजाला ढूँढती है। यह पूरी कविता 'बाघ' के बहाने साधारण मनुष्य के संघर्ष, उसकी असफलता और जिजीविषा का एक महान रूपक तैयार करती है। इसमें जितना भय है, उतना ही जीवन का जादू भी। प्रख्यात ओड़िया कवि हरप्रसाद दास ने ठीक लिखा है– 'बाघ' कई अर्थों में एक महत्वपूर्ण कविता है। कविता के अंत में जब बाघ की गुर्राहट थमती है तो कविता का जादू एक बार और हमारे सिर चढ़कर बोलता है और यहीं से शुरू होती है शून्य के महावृत्त में शब्दों की सामूहिक झंकृति की वृहत्तर यात्रा.........।'

12.10 भाषा और काव्यात्मकता

केदार जी के लेखन का आरंभ गीतों से हुआ था। यह अकारण नहीं है कि उनकी कविताएं कविता की शर्त पर 'कविता' हैं। उन्हें बलात् कविता सिद्ध करने की जरूरत नहीं पड़ती। उनकी कविताओं में गहरा अनुशासन विन्यस्त होता है लेकिन उनमें रूप और अन्तर्वस्तु को अलगाकर देखना असंभव है। केदार जी में रूप का आग्रह है लेकिन अपनी पूर्णता में वे अन्तर्वस्तु के सौन्दर्य के कवि हैं। उनमें उनकी कविताओं से गुजरते हुए सिर्फ विषय का चयन नहीं, शब्दों का चयन और भाषिक विन्यास भी देखना चाहिए। उनकी 'बाजार में आदिवासी' कविता हो या कैलाशपति निशाद, शुभनारायण शर्मा और निजामुद्दीन जैसे इस महादेश के साधारण लोगों को समर्पित 'जहाँ से अनहद शुरू होता है' शीर्षक कविता हो, उनकी असंदिग्ध प्रतिबद्धता अपने पाठकों का स्वागत करती मिलती है। उनकी कविताओं में महाकवि निराला की आवाज का स्मरण है तो 'आदमी और पशु के बीच पुल बने हीरा भाई' का भी स्मरण है, जिन्हें कोई नहीं

जानता। यह याद रखने की बात है कि केदारनाथ सिंह मूलतः उन लोगों के कवि हैं जो दुनिया बनाते हैं लेकिन जिन्हें यह दुनिया न जानती है, न जानना चाहती है। इस अर्थ में वे महात्मा गाँधी के 'आखिरी आदमी' और डॉक्टर अम्बेडर के सपनों के कवि हैं। वे 'एक ठेठ किसान के सुख' को काव्य–विषय बनाते हैं और उदारीकरण के इस दौर में जब स्त्री को महज एक वस्तु में बदलने की हर संभव कोशिश की जा रही है तब कृतज्ञता का आदिम राग सुनाते हैं–

किसी को प्यार करना
तो चाहे चले जाना सात समुंदर पार
पर भूलना मत
कि तुम्हारी देह ने एक देह का
नमक खाया है।

केदार जी के अब तक के अंतिम संग्रह 'सृष्टि पर पहरा' में कई कविताएं छन्द में हैं और आखिरी कविता में जीवन का छन्द है। अमरता की पारम्परिक समझ और धारणा का प्रत्याख्यान करते हुए साधारण के औदात्य का गीत सुनाने वाला यह कवि धीरे से कहता है–

जाऊँगा कहाँ
रहूँगा यहीं
किसी किवाड़ पर
हाथ के निशान की तरह
पड़ा रहूँगा
किसी पुराने ताखे
या संदूक की गंध में
छिपा रहूँगा मैं
दबा रहूँगा किसी रजिस्टर में
अपने स्थायी पते के
अक्षरों के नीचे
या बन सका
तो ऊँची ढलानों पर
नमक ढोते खच्चरों की
घंटी बन जाऊँगा
या फिर माँझी के पुल की
कोई कील
जाऊँगा कहाँ
देखना
रहेगा सब जस का तस
सर्फ मेरी दिनचर्या बदल जाएगी
साँझ को जब लौटेंगे पक्षी
लौट आऊँगा मैं भी
सुबह जब उड़ेंगे
उड़ जाऊँगा उनके संग.....।

कहना होगा कि जब तक हिन्दी कविता का अस्तित्व रहेगा, केदारनाथ सिंह कहीं नहीं जाएंगे। उनकी कविताओं का होना मनुष्यधर्मी भरोसे का होना है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

बोध प्रश्न –1
निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दें।

1. केदारनाथ सिंह के प्रमुख संग्रहों के नाम लिखिए।
   ....
   ....
   ....
   ......
2. केदारनाथ सिंह की कविता में आमजन के संघर्ष के चित्रण का परिचय दीजिए।
   ....
   ....
   ....
   .....
3. मातृभाषाओं की पक्षधरता पर केदारनाथ सिंह की कविता में किस तरह विचार किया गया है? स्पष्ट कीजिए।
   ....
   ....
   ....
   ....
4. 'बाघ' कविता पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।
   ....
   ....
   ....
   .....

12.11 सारांश

आपने यह इकाई पढ़ ली है। इस इकाई को पढ़ने के बाद निश्चित रूप से आपने केदारनाथ सिंह की कविता की विशेषताओं को आत्मसात कर लिया है। आपने यह जान लिया होगा कि केदारनाथ सिंह हिंदी के ऐसे विशिष्ट कवि हैं जिनका गहरा प्रभाव 1980 के बाद की हिंदी कविता पर दिखाई देता है। उन्होंने हिंदी कविता में गांव और शहर के संघर्ष को वाणी दी। उनकी कविताएं इस बात का प्रमाण हैं कि उन्होंने लोक का पुनराविष्कार किया। इस महादेश की साधारण जनता को उनकी कविताओं में स्पष्ट नायकत्व मिला है।

केदारनाथ सिंह की कविताएं शोर के विरूद्ध सृजन के राग की कविताएं हैं। उनकी कविताएं नकारात्मकता और विध्वंस का प्रतिकार करते हुए एक संवेदनशील और चेतस विश्व के सृजन का स्वप्न देखती हैं। निश्चय ही इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप समकालीन हिंदी कविता और केदारनाथ सिंह की कविता के सामर्थ्य से परिचित हो गए होंगे/होंगी।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1. हिंदी कविता में केदारनाथ सिंह का स्थान निर्धारित कीजिए।
   ....
   ....
   ....
   ....

2. केदारनाथ सिंह की कविता में उम्मीद के स्वर पर विचार कीजिए।

....
....
....
....

3. केदारनाथ सिंह की भाषा में काव्यात्मकता पर टिप्पणी कीजिए।

....
....
....
....

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY